ओ३म्

अठारह सौ सत्तावन
और
स्वामी दयानन्द

आचार्य उमेश भारद्वाज

ओ३म्

अठारह सौ सत्तावन

और

स्वामी दयानन्द

लेखक—वासुदेव वर्मा

निर्देशक—रामगोपाल शास्त्री वैद्य

ओ३म्

अठारह सौ सत्तावन

और

स्वामी दयानन्द

लेखक—वासुदेव वर्मा

निर्देशक—रामगोपाल शास्त्री वैद्य

प्रकाशक—
भारतीय लोक-समिति
१६९८, आर्य-समाज मार्ग
करौलबाग, नई-दिल्ली

मूल्य—दो रुपये

प्रथम संस्करण
विक्रमी २०२६
दयानन्दाब्द १४६
सन् १९७०

मुद्रक—
सुरेन्द्रकुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस,
सोनीपत

प्राक्कथन

मुझे महती प्रसन्नता है कि भारतीय लोक-समिति के लिये श्री वासुदेव वर्मा ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन के राजनीतिक पक्ष पर इस पुस्तक की रचना की है। आर्य-समाज के विद्वानों ने अभी तक इस सम्बन्ध में कोई विशेष प्रयास नहीं किया था। मेरी देख-रेख में और मेरे सुझावों के अनुसार श्री वर्मा ने घोर परिश्रम करके अनेक पुस्तकों से सामग्री इकट्ठी की है। उन्होंने स्वामीजी के धार्मिक व समाज-सुधार की गति-विधियों पर कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं समझी और केवल राजनीतिक पक्ष को ही बड़ी सुन्दरता से क्रम-बद्ध प्रस्तुत किया है।

भारतीय लोक-समिति (आर्य-समाज की राजनीतिक समिति) का जन्म सन् १९६१ में हुआ था और सन् १९६२ के चुनाओं में अन्तः-कारणों से, जिनके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, केवल इतना ही कह सकते हैं कि समिति का बाह्य रूप खत्म हो गया, लेकिन आन्तरिक रूप अभी तक जीवित है। '**महर्षि दयानन्द की राष्ट्रिय विचार-धारा**" नामक पुस्तक हम पहले प्रकाशित कर चुके हैं और '**अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द**" समिति की ओर से दूसरा प्रयास है। पाठक पुस्तक पढ़ने के बाद यह अनुभव करेंगे कि स्वामी दयानन्द के हृदय में देश-प्रेम की कितनी तीव्र अग्नि प्रज्वलित थी और यदि षड्यन्त्र करके उनके जीवन का अन्त न किया जाता तो देश के लिये वे क्या कुछ कर जाते ।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि बिना किसी राजसी सत्ता के किसी भी धर्म या संस्था का उद्धार, प्रचार व प्रसार संभव नहीं है। अतः मैं इस बात का प्रबल समर्थक हूं कि आर्य-समाज के लिये राजनीतिक सत्ता की अतीव आवश्यकता है और इसी विचार से मैंने सारी आयु कार्य किया है। देश-विभाजन से पूर्व 'आर्य स्वराज्य सभा, पंजाब, लाहौर' में और विभाजन के बाद 'भारतीय लोक-समिति' में।

अन्त में मैं श्रद्धेय श्री ज्ञानी पिण्डीदासजी, श्रद्धेय पं० आत्मानन्दजी विद्यालंकार और श्री विशम्बरदास जी मन्त्री आर्य-समाज करौलबाग दिल्ली का आभारी हूं, जिन्होंने इस कार्य में मुझे और श्री वर्मा को बहुमूल्य सुझाव दिये।

शिवरात्री
मार्च ६, १९७०

रामगोपाल शास्त्री वैद्य

आर्यों के चक्रवर्ती-राज्य के स्वप्न-द्रष्टा व महान् क्रान्तिकारी

महर्षि दयानन्द सरस्वती

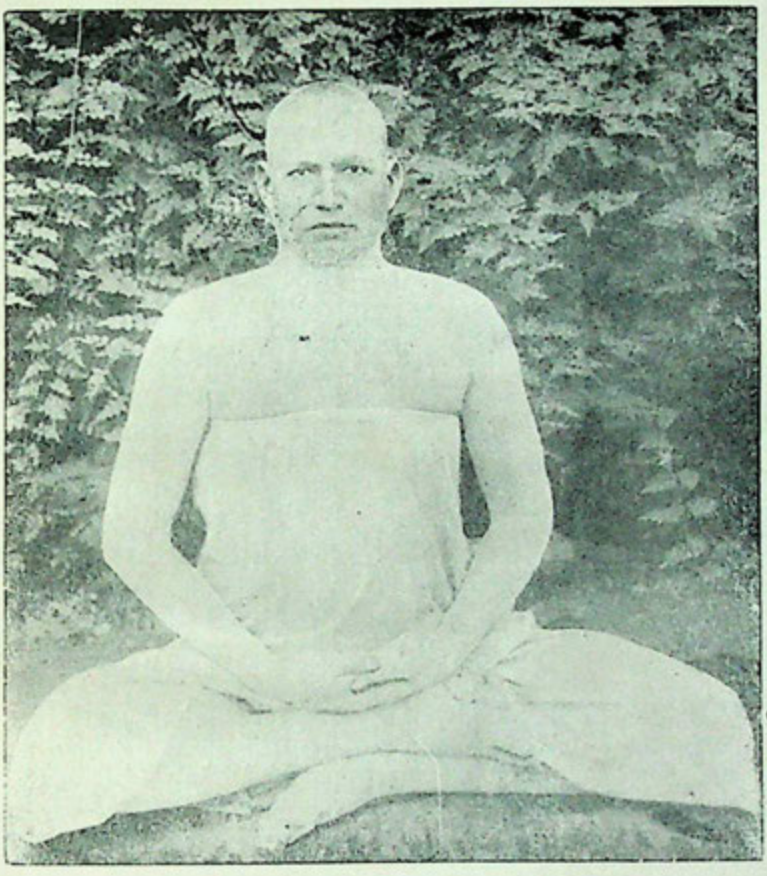

संवत् १९२४ (सन् १८६७) में मेरठ में लिया गया चित्र
ऋषि-भक्त श्री मामराजसिंह जी द्वारा संगृहीत
श्री विजयकुमारजी, गोविन्दराम हासानन्द के सौजन्य से प्राप्त

भूमिका

वैदिक ज्ञान के पुनरुद्धारक, धर्मान्धता, गुरुडम, अन्धकार, निराशा एवं दासता को देश से उखाड़ फेंकने के दृढ़ संकल्पी देव दयानन्द की धार्मिक एवं सामाजिक क्रान्तिकारी विचार-धाराओं पर अनेक विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में प्रकाश डाला है, परन्तु आज तक उनकी राजनीतिक विचार-धारा को प्रकाश में नहीं लाया गया। संसार भर ने उन्हें धार्मिक व सामाजिक क्रान्तिकारी युग-पुरुष तो माना, परन्तु राजनीतिक नेता के रूप में उन्हें वह सम्मान नहीं मिल सका, जो उनके निर्वाण के पश्चात् जन्म लेने वाली कांग्रेस के नेताओं को मिला। यद्यपि देशवासियों में देश-भक्ति का प्रचार करके दासता से मुक्ति पाकर **चक्रवर्ती आर्य-साम्राज्य स्थापित करने का उपदेश सर्वप्रथम उन्होंने ही दिया था।** उनकी राजनीतिक गति-विधियों का पूर्ण इतिहास अभी तक नहीं मिल सका, लेकिन अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में सन् १८५७ की राजनीतिक क्रान्ति का वर्णन जिस ढंग से उन्होंने किया है, (यद्यपि अपने सम्बन्ध में उन्होंने अपने जन्म-पत्र में यही लिखा है कि सन् १८५७-५८-५९ में वह नर्मदा नदी के तट पर ही घूमते रहे) से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वह उस राष्ट्रिय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते रहे हैं। अभी पिछले दिनों उनके और राष्ट्रिय-क्रान्ति के नेता नानासाहब और अजीमुल्ला से सम्पर्क की भी कुछ जानकारी मिली है। खोज हो रही है और कह नहीं सकते कि महर्षि के राष्ट्रिय-क्रान्ति में सहयोग की कितनी सामग्री उपलब्ध हो सकेगी, अभी तो इस पुस्तक को प्रकाशित करने का उद्देश्य उनकी राजनीतिक गति-विधियों को ही प्रकाश में लाना है।

महर्षि दयानन्द सन् १८२४ में पैदा हुये और सन् १८८३ में उन का निर्वाण हुआ। केवल ५९ वर्ष की आयु में ही उस आदित्य ब्रह्मचारी ने देश के सर्वाङ्गीण उद्धार के लिये जो-जो कार्य किया, जब उस सब की खोज हो जायगी तब ही देशवासी जान सकेंगे कि वह देव पुरुष भारत के लिये क्या कुछ करते रहे और क्या कर गये और सन् १८५७ से लेकर १८८३ अर्थात् शरीर छोड़ने तक निरन्तर वह देशवासियों में

स्वदेश-भक्ति और स्वदेशी मान्यताओं से प्रेम की भावनाओं का बीजारोपण कितनी तन्मयता एवं श्रद्धा से करते रहे हैं और उसी देव-रूप ऋषि द्वारा सींची गई खेती को पकाकर तत्पश्चात् जन्मी कांग्रेस ने काटा और स्वराज्य प्राप्त करने का श्रेय लिया। इसी सारे जीवन-कार्य को केवल एक ही घटना से सार-गर्भित किया जा सकता है। जब महर्षि ने सन् १८७२ में कलकत्ता में भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थब्रुक को स्पष्ट शब्दों में निर्भीकता पूर्वक यह उत्तर देकर उनका मुंह बन्द कर दिया—"**श्रीमान् ! मैं तो नित्य सायं-प्रातः अपने देशवासियों के लिये अखण्ड चक्रवर्ती राज्य की प्रार्थना किया करता हूं।**" और ऋषि के इसी स्पष्ट एवं निर्भीक उत्तर से चिढ़कर ही वायसराय महोदय ने उन्हें **बागी फकीर की उपाधि** दी और देश भर के गुप्तचर विभाग को उनकी देख-रेख करते रहने का आदेश दिया। कई लोगों का यह भी मत है कि जोधपुर में महर्षि को विष दिलाने में वहां के अंग्रेज कमिश्नर एवं मुसलमान जिला स्वास्थ्य अधिकारी का हाथ था। अंग्रेज सरकार महर्षि की गति-विधियों से बहुत परेशान थी, विशेष रूप से राजों-महाराजों में राष्ट्रियता के प्रचार के कारण। महर्षि की असमय में ही असामान्य तरीकों से इस प्रकार हत्या की गई, ऐसा हमारा निश्चित मत है। महर्षि की राष्ट्रियता का ज्वलन्त प्रमाण इससे अधिक और क्या हो सकता है ?

देव दयानन्द के राजनीतिक विचारों को उजागर करने के लिये भारतीय लोक-समिति सतत प्रयास कर रही है। उसी के अनुरूप "**महर्षि दयानन्द की राष्ट्रिय विचार-धारा**" इससे पूर्व प्रकाशित की जा चुकी है। "**अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द**" उसी क्रम की दूसरी पुस्तक है। निरन्तर खोज हो रही है और जब महर्षि की सम्पूर्ण राष्ट्रियता सम्बन्धी गति-विधियां प्रकाश में आ जायेंगी, तभी भारतवासी एक स्वर से यह कह सकेंगे कि **यदि महात्मा गांधी देश के राष्ट्र पिता हैं तो निस्सन्देह महर्षि दयानन्द उसके पितामह** हैं और तभी वह लोग भी जो कुतब मिनार पर चढ़कर स्वराज्य प्राप्ति का श्रेय केवल कांग्रेस को ही दे रहे हैं, नत मस्तक होकर यह कहेंगे कि देश-भक्ति और राष्ट्रियता के विचार कांग्रेस के जन्म से भी पूर्व महर्षि देशवासियों में भर चुके थे। कांग्रेस को तो बना बनाया क्षेत्र उपलब्ध हुआ था।

—**वासुदेव वर्मा**

विषय-सूची

परिच्छेद	विषय	पृष्ठाङ्क
१	—स्वामी दयानन्द से पूर्व	१
२	—स्वामी दयानन्द का प्रादुर्भाव	७
३	—स्वातन्त्र्य-क्रान्ति में महर्षि का योग-दान	१०
४	—राष्ट्रियता-प्रचारक स्वामी दयानन्द	२५
५	—स्वामी दयानन्द की आर्थिक सुधार-योजना	३८
६	—स्वामी दयानन्द की राजनीतिक विचार-धारा	४५
७	—आर्य-समाज और राजनीति	६६
८	—स्वामी दयानन्द के विषय में सम्मतियां	८०
९	—स्वामी दयानन्द का स्वीकार-पत्र	९७
१०	—आर्य-समाज की राजनीतिक अग्नि-परीक्षायें	१००
११	—उपसंहार	११३

ओ३म्

अट्ठारह सौ सत्तावन

और

स्वामी दयानन्द

प्रथम परिच्छेद

स्वामी दयानन्द से पूर्व

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मानव सृष्टि की रचना तिब्बत देश में होने की सप्रमाण घोषणा की है। विशाल जम्बू द्वीप के भारत राष्ट्र में आर्यावर्त्त देश में सब आर्य लोग ही रहते थे। इन लोगों में दो प्रकार के वर्ग थे—एक वह जो चरित्रवान् और विद्वान् थे और दूसरे मूर्ख, अविद्वान् और अपढ़। पहले वर्ग के लोग आर्य के नाम से ही सम्बोधित होते थे और दूसरे वर्ग के दस्यु नाम से। इन लोगों के चार वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जब जन-वृद्धि होती गई तो धीरे-धीरे वह फैलने लगे। आर्यों से पहले इस देश में कोई मनुष्य नहीं रहता था, इस लिये यह कहना कि आर्य लोग किसी दूसरे स्थान से इस देश में आ कर बसे थे, सर्वथा निरर्थक व निर्मूल है।

आर्य लोग सब वैदिक धर्म को ही मानते थे। वह वेद को ईश्वरीय वाणी मानते थे और इस कारण वेदों में उनकी बड़ी आस्था थी। परन्तु कालान्तर में नये मत-मतान्तरों के जन्म होने लगे और रामायण व महाभारत काल के बाद तो निरन्तर धार्मिक भावनायें बदलने लगीं। बौद्ध और जैन मतों का प्रचलन हो गया और अहिंसा के नाम पर उन लोगों ने आर्यत्व और वैदिक सिद्धान्तों

में भी परिवर्तन कर लिये। उन को शीघ्र ही अशोक जैसे शक्तिशाली सम्राट् का संरक्षण भी मिल गया और इस तरह से बौद्ध मत का बोल बाला हुआ। बढ़ते हुए बौद्ध मत के प्रचार को रोकने के लिये शंकर ने वेदान्त मत का खूब प्रचार किया और इस तरह से बौद्ध-विचार प्रवाह में कुछ मन्द गति आने लगी। लेकिन वैदिक आस्था में कुछ ढील आने का परिणाम यह निकला कि जन-मानस में अनेक भ्रान्तियां पैदा होने लगीं और इस तरह अनेक मत-मतान्तरों के जन्म होने लगे। धार्मिक जगत् में एक धांधली-सी मच गई, जो भी थोड़ा बहुत पढ़ा लिखा उठा, उस ने नया मत खड़ा कर के नई परम्परायें चलाने का प्रयत्न किया। गुरुडम, पाखण्ड और मिथ्यावाद न जाने क्या-क्या कुछ प्रचलित हो गया। जब देश में इस प्रकार की धार्मिक अस्त-व्यस्तता व्याप्त थी तो मुसलमानी राज्य यहां स्थापित हो गया। इस्लाम के शासकीय प्रचार से हिन्दुओं की धार्मिक परम्परायें प्रायः विलीन होने लगीं। अनेक प्रकार की धार्मिक सामाजिक प्रथायें अपने आप मलिया-मेट हो गईं और मुसिलम राजाओं ने अनेक प्रकार से हिन्दुओं को धर्म-भ्रष्ट करके अपनी जन-संख्या में वृद्धि की। हिन्दुओं के गुरुडम-वर्ग द्वारा चलायी गईं धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों ने जलते पर घी का काम किया और उन का मुसलिम नरेशों ने भर पूर लाभ उठाया। पिछड़ा-वर्ग और स्त्री-वर्ग की जीर्ण-शीर्ण दशा से मुसलिम-वृद्धि में दिन प्रति-दिन वृद्धि होने लगी और हिन्दु धड़ाधड़ मुसलमान होने लगे।

फिर अंग्रेजी राज्य आया। वह मुसलमानों से भी बढ़ कर हिन्दु-संस्कृति व सभ्यता के घातक निकले। मुसलमान कुछ तो हिन्दुओं की कुरीतियों और कुछ ज़न (स्त्री) ज़र (धन) और ज़मीन (भूमि) के प्रलोभनों से फैला, लेकिन अंग्रेज शासकों ने तो अनेक ऐसे प्रपञ्च और षड्यन्त्र रचे कि मुसलमान शासकों को मात कर दिया। ईसाईयों ने हिन्दु-धर्म की जड़ों को इस बुरी तरह से उखाड़ा कि हिन्दुओं को सत्य-असत्य धर्म-अधर्म का कुछ भी ध्यान न रहा। मुसलमान अपने शासन का अन्त होने के बाद भी हिन्दु-कुरीतियों से लाभ उठाते रहे, लेकिन ईसाई लोग तो शासक थे ही। इन्हों ने बड़ी निर्ममता से सरल हिन्दु-वर्ग की दुर्बलताओं

और निर्धनता का लाभ उठाया। ऐसी दशा में हिन्दु-धर्म में पाखण्ड, गुरुडम और वाम-मार्ग जैसी अनेक घातक प्रवृत्तियां प्रचलित हो गईं। ब्राह्मणों ने स्वार्थ-सिद्धि के लिये अनेक प्रकार के भ्रम जाल फैलाये हुये थे ही, वैदिक-ज्ञान के स्थान पर कपोल कल्पित मानवीय धारणाओं से जन-साधारण कुछ इस तरह उलझा हुआ था कि वह विधर्मियों की कुचालों से उभर न सका। वैदिक-ज्ञान पर अनेक प्रकार के मानवीय ग्रन्थों का बोझ पड़ गया और वह नीचे दब गया। भारत की प्राचीन सभ्यता व संस्कृति लुप्त प्रायः हो गई। जो भी महात्मा पैदा हुवा उस ने वैदिक-युग की पुनरावृत्ति के बजाये निजी विचारों का ही प्रचार किया। वैदिक-ज्ञान मानों नवीन महात्माओं के विचारों के चक्रव्यूह में विस्मृत सा होने लगा। अंग्रेज-चातुर्य हिन्दुओं की इस दुर्बलता को ताड़ गया और उसने वैदिक-ज्ञान की खिल्ली उड़ानी शुरु कर दी। अंग्रेज विद्वानों ने वेदों के उन पाखण्डी ब्राह्मणों से भी बढ़ कर अर्थों के अनर्थ किये, जिस से जन-मानस के हृदयों मे वेदों की आस्था खत्म करना ही अभीष्ट था। ईश्वरीय-वाणी वेदों के संबन्ध के कुछ तो स्वार्थी गुरुओं ने भ्रान्तियां पैदा कर के परिहास किया और रही सही कसर अंग्रेज विद्वानों ने पूरी कर दी। वैदिक युग का गौरव-शाली इतिहास इस प्रकार के दुष्प्रयासों से विलीन होने लगा। जब धार्मिक-मान्यतायें विधर्मी राज्य होने से शिथिल हो जायें तो सामाजिक अधः-पतन भी प्रायः अवश्यम्भावी होता है। मुसलिम काल में हिन्दुओं ने विवशता से या अज्ञानता में इतनी गलत पर-म्परायें चालु कर दीं कि जिन का वर्णन करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, विधवाओं की दुरवस्था, सती-प्रथा, स्त्रियों की अशिक्षा इत्यादि-इत्यादि अनेक दोष सामाजिक जीवन में पैदा हो गये और कपोल-कल्पित धर्म-रक्षक ब्राह्मणों के स्वार्थ-पूर्ण प्रचार से जातीय अवस्था हीन ही होती गई। विधर्मी तो इसी टोह में रहते ही थे, उन्हों ने इस सामाजिक दुरवस्था का पूरा लाभ उठाया। अनेक बन्धनों के कारण हिन्दु जाति का ह्रास होने लगा और स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध विधर्मी बनने लगे। सामा-जिक बुराईयां प्रचलित हो जाने से हिन्दुओं की संख्या कम होने लगी और विधर्मियों की दिनों दिन बढ़ने लगी। मुसलमान अधिक-तर लोभ और अत्याचार से हिन्दुओं को पतित करते थे। तो

ईसाईयों ने अनेक वञ्चनाओं से हिन्दुओं को पतित करना शुरु कर दिया। देश की गरीबी, अशिक्षा, जातिवाद, स्त्रियों की हीन दशा ईसाईयों को हिन्दु धर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने में बड़ी सहायक हुई। शिक्षणालयों, अस्पतालों, और इस प्रकार के दूसरे षड्यन्त्रों से ईसाईयों ने सर्वसाधारण को भर पूर अपनी ओर खींचा। हिन्दु धर्म की नींव डोलने लगी। लोग धड़ाधड़ ईसाई बनने लगे। निर्धन किसी लालच से, शिक्षित अपने धर्म-ग्रन्थों से अपरिचित होने से, स्त्रियां सामाजिक क्षेत्र में सम्मान पाने की इच्छा से, अछूत उच्चवर्गीय हिन्दुओं के अत्याचारों से तंग आकर विधर्मी होने लगा। उन की रक्षा करने वाला कोई न रहा, उन को समझाने वाला कोई नहीं था। ईसाईयों के लिये हिन्दुओं की यह दुरवस्था पकी खेती के समान हो गई, चहुं ओर से यहीं आवाज आती, आज अमुक परिवार पतित हो गया, आज अमुक स्त्री मुसलमान के घर जा बसी, आज हरिजनों के गांव के गांव ईसाई हो गये। इत्यादि इत्यादि।

परन्तु फिर भी ऐसी दुरवस्था में शायद हिन्दु संभल पाते, यदि वह राजनीतिक दासता में न जकड़े होते, उन में फूट न होती, उन की परस्पर शत्रुता एक दूसरे को नष्ट भ्रष्ट करने में सहायक न होती। हिन्दुओं का सर्वनाश स्वयं उन्हीं के हाथों हो रहा था। वह मिल कर सोचने का प्रयत्न ही नहीं करते थे। मुसलमानों के राज्य में हिन्दु राजाओं, सरदारों, जागीरदारों ने राजा से मिल कर दूसरे हिन्दु राजाओं, सरदारों, जागीरदारों को पिटवाया, मरवाया और इस तरह से कमजोर हो जाने से स्वयं भी पतित हुये, तिरस्कृत हुये, लड़कियां यवनों को दीं और दूसरों का सर्वनाश करने के उपरान्त स्वयं भी सर्वनाश को प्राप्त हुये। अंग्रेजों के राज्य में उन की चाटुकारिता, उन के चरण-चुम्बन और उन के अन्ध-अनुकरण से न केवल स्वयं पतित हुये, बल्कि दूसरों को भी ले डूबे और इस तरह हिन्दु जाति परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी होने से निरन्तर गिरने लगी। राजकीय शासन में पनपती ईसाई मिशनरियों की गति-विधियां प्रखर से प्रखरतर होने लगीं और उन के प्रपञ्चों ने निर्धन भारत को प्रभावित किया और वह हिन्दु धर्म को छोड़ ईसाई होने लगे। बाल

विधवाओं को भी नया जीवन दिखाई देने लगा, शिक्षितवर्ग पद-लालसा में पतित होने लगा और अन्य लोग राज-सत्ता से लाभ उठाने के लिये पादरियों के प्रलोभनों का शिकार बनने लगे। संक्षेप में राजनीतिक दासता ने भारतीय हिन्दुओं को मुसलिम काल से भी बढ़ कर पद-दलित कर दिया, और वह अपने पांव पर खड़े न रह सके, निरन्तर गिरते ही गये। हिन्दु नरेश व्यभिचारी अल्पज्ञ और इतने कमजोर निकले कि वह भी जाति को इस गिरावट से संभाल न सके। उन को अपने कुकर्मों से ही अवकाश न मिलता था जिससे वे मिल बैठ कर जाति की गिरती दशा पर विचार करते। उनको यदि ध्यान रहता तो इस बात का कि कहीं वह अंग्रेज की नजरों से गिर न जायें, अंग्रेज वायसराय उन से नाराज न हो जाये और इस तरह से उन की गद्दी न छिन जाये। जब नरेशों की ऐसी अवस्था हो तो प्रजा का क्या कहना। उन में साहस व शक्ति कहां से आ सकती थी कि वह देश और जाति की रक्षा कर पाते। क्या राजा तथा प्रजा, वह भी अंग्रेज माई-बाप के आगे भेड़ बकरियों की तरह हांके जाने लगे।

लेकिन देश की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक दुरवस्था का जो वर्णन ऊपर किया गया है, उस में भी देश और जाति में ऐसे लोगों का अभाव न होता, जो देश की शोचनीय अवस्था को सुधारने में सहायक होते यदि देश में आर्थिक दुरवस्था न होती। वास्तव में हिन्दुओं की आर्थिक दुर्दशा मुसलिम काल से ही शुरु हो गई थी। मुसलिम शासक जनता को पृथक् लूटते थे और देशीय नरेश पृथक्। मुसलिम शासक धन को बाहर ले जाते और देशीय नरेश कुकर्मों में स्वाहा कर देते थे। परिणाम हुआ देश और जाति निर्धन होती गई। ईसाई शासकों ने तो कमाल ही कर दिया। वह जनता को भी लूटते और नरेशों को भी। साधारण जनता दोनों पाटों में बुरी तरह से पिस रही थी। खाने को अन्न और पहनने को वस्त्रों का भी अभाव हो रहा था। ऐसी आर्थिक दुरवस्था के कारण फिर जनता ईसाईयत की चका-चौंध से प्रभावित न होती, तो क्या करती ? महर्षि स्वामी दयानन्द ने स्वयं उस समय की आर्थिक दुरवस्था का अत्यन्त करुण चित्र अपने ग्रन्थों में खींचा है। एक बार उन्होंने गंगा तट पर बैठे हुये

एक महिला को देखा जो अपने मृतक पुत्र का शव गंगा में प्रवाहित करने आई थी और अपनी धोती का आधा पल्ला फाड़ कर उसका तन ढांपा था। महर्षि स्वयं लिखते हैं कि यह दृश्य देख कर उन की आखों से अश्रु निकल पड़े। निर्धनता अथवा आर्थिक दुरवस्था सौ पापों की जननी है। ऐसी जीर्ण-शीर्ण दशा में लोग ईसाई मत की ओर न झुकते तो क्या करते ? स्त्रियां देव-दासियां बन कर पाखण्डी साधुओं की काम-वासना को शान्त करने का साधन न बनती तो क्या करतीं ? पुरुष ईसाईयत की ओर न झुकते तो उन के लिये जीवित रहने का मार्ग भी दूसरा कौन सा रह गया था ? सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचारों से बचने के लिये अछूत यदि प्रलोभनों में न फंसते तो कहां जाते ? धार्मिक मदान्धता, सामाजिक कुरीतियां, राजनीतिक दासता और आर्थिक दुरवस्था प्राचीन गौरव-पूर्ण वैदिक धर्म को निरन्तर लुप्त प्रायः करती ही गईं और उसके सुधार के लिये कोई महापुरुष पैदा न हुआ।

●

द्वितीय परिच्छेद

स्वामी दयानन्द का प्रादुर्भाव
जन्म, वंश, अध्ययन, तप और त्याग

स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रादुर्भाव से पूर्व देश की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दुर्दशा का संक्षिप्त दिग्दर्शन पिछले परिच्छेद में कराया जा चुका है। धार्मिक मदान्धता, सामाजिक कुरीतियों, राजनीतिक षड्यन्त्रों और आर्थिक संकटों के कारण देश में चहुं ओर अन्धकार सा फैला हुआ था। अंग्रेज खिलाड़ी ने अपने राज्य को स्थिर रखने के लिये ऐसे प्रपंच फैला रखे थे, जिनके कारण देश के विभिन्न वर्ग बुरी तरह से बंटे हुए थे। भारत का उज्ज्वल एवं गौरव पूर्ण इतिहास लुप्त प्रायः हो चुका था। धार्मिक क्षेत्र में अवैदिक मत ऊधम मचा रहे थे और सामाजिक क्षेत्र में स्वार्थी लोग मन-मानी कर रहे थे। राजनीतिक क्षेत्र में देश बुरी तरह से बंटा हुआ था और आर्थिक क्षेत्र में जन-साधारण की स्थिति करुणा-जनक थी। स्वामी दयानन्द को ऐसे अन्धकार-मय युग में चहुं मुखी युद्ध करना पड़ा। उन्होंने किसी नये मत की नींव तो न डाली, अपितु दबे हुये वैदिक-ज्ञान का आश्रय लेकर उसके पुनरुद्धार का ही प्रयत्न किया। तत्कालीन मनीषियों से वैदिक-ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने नाद बजाया कि जो कुछ वेदानुकूल है--वह ठीक और जो उसके विरुद्ध है वह गलत है।

जैसा कि पाठक पहले भूमिका में पढ़ चुके हैं, कि इस ग्रन्थ को रचने का उद्देश्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के धार्मिक, व सामाजिक कार्यों का वर्णन करना नहीं है, अपितु केवल उनकी राजनीतिक गति-विधियों को ही उजागर करना है। उनकी राजनीतिक गति-विधियां अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकीं। पाठक देखेंगे कि उनके हृदय में भारतीयों के अखण्ड, स्वतन्त्र स्वराज्य के लिये कितनी अग्नि प्रज्ज्वलित थी और उसके लिये उन्होंने कितना संघर्ष किया था।

स्वामी दयानन्द का जन्म १८२४ ई० में टंकारा (मोरवी राज्य-गुजरात) में वहां के शासनाधिकारी औदीच्य ब्राह्मण कर्षन जी के घर में हुआ। कर्षन जी के दूसरे विवाह से यह सबसे बड़ी संतान थी। श्री युधिष्ठर जी मीमांसक की खोज के अनुसार "कर्षन जी की पहली स्त्री से चार पुत्र थे। दूसरी स्त्री से पांच संतानें थी – दो लड़के और तीन लड़कियां। कर्षन जी ने दूसरा विवाह ५३ वर्ष, की आयु में किया था। इससे विक्षुब्ध होकर चारों भाई घर छोड़कर पास के अपने पुराने गांव में चले गये थे।"[१] कर्षन जी ने दूसरे विवाह की इस सबसे बड़ी संतान का नाम मूलशंकर रखा। पहली स्त्री से चारों पुत्रों के नाराज होकर चले जाने से कर्षन जी बालक मूलशंकर को बहुत प्यार करते थे। बालक भी बड़ा तीव्र बुद्धि था। बाल्यावस्था में ही उसने पिता और गुरुओं से कई एक धर्म-शास्त्रों का अध्ययन कर उहें कण्ठस्थ कर लिया था। भले ही वह पौराणिक पंडितों द्वारा पढ़ाये गये थे। कर्षन जी तो थे ही शिवभक्त, बालक मूलशंकर अपनी बौद्धिक प्रखरता के कारण प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क कर उसकी जड़ तक पहुंचने का यत्न करता था। अपने चाचा की मृत्यु पर "मृत्यु क्या है और इससे कैसे बचा जा सकता है।" ऐसा गम्भीर प्रश्न उसके मस्तिष्क में उभरा। अपनी छोटी बहिन, जिसे वह प्यार करता था-की मृत्यु पर तो वह बहुत उद्विग्न हो उठा। उधर पौराणिक-शास्त्रों के अध्ययन से भी उसकी तीक्ष्ण बुद्धि असन्तुष्ट थी। ठीक ऐसी ही मानसिक अवस्था में पिता ने उसे शिवरात्री का व्रत रखने और रात भर जागकर पूजा करने को विवश किया। पिता की आज्ञा से बंधा मूलशंकर शिव की पूजा में रात भर जागता रहा। जब सब भक्त जन सो गये, तो बालक ने देखा कि एक चूहा शिवजी की मूर्ति पर चढ़कर मिठाई आदि खा रहा है। मूलशंकर के शंकित मन पर एक और चोट पड़ी "जो शिव अपने ऊपर नाच रहे मूषक को नहीं हटा सकता, वह सच्चा शिव नहीं हो सकता।" मन में विचार का आना था कि वह खिन्न मन से घर चला गया और जाकर सो गया। मन में संकल्प कर लिया कि मैं सच्चे शिव की तालाश करूंगा।

जब बालक मूलशंकर १९-२० वर्ष का हो गया तो पिता ने उसे

---

१. द्र० महर्षि दयानन्द सरस्वती का भ्रातृवंश और स्वसृवंश पृष्ठ १४-१५।

विवाह-बन्धन में बांधने का यत्न किया, लेकिन जिसके मन में सत्य की खोज की लगन लग चुकी हो, वह इस बन्धन में कैसे बंधता ? आखिर २२ वर्ष की आयु अर्थात् १८४६ ई० में मूलशंकर ने घर के तमाम सुखों पर लात मार दी और घर का परित्याग कर दिया। इसके बाद दस वर्षों तक बालक मूलशंकर, जो स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास की दीक्षा लेकर दयानन्द सरस्वती बन चुका था, अनेक मठों-योगियों से शिक्षा ग्रहण करता रहा। गंगा के तट पर वर्षों तपस्या की। असंख्य कष्ट सहकर जहां भी देश भर में किसी विद्वान् सन्त का पता लगा—उसके पास पहुंचा—जो कुछ वहां से मिल सका—उसे ग्रहण किया– और फिर आगे चल पड़ा। इस तरह देश का भ्रमण कर विद्या और योग-साधना में वह प्रवीण हो गया। सब धर्म-शास्त्रों में दक्षता प्राप्त कर ली। वह किस-किस स्थान पर कितना समय रहा—वहां से क्या-क्या ग्रहण किया—कहां तप और तपस्या द्वारा अपने जीवन को तपाया—स्वामीजी ने अपने स्वरचित जीवनचरित्र में इन सबका भली-भांति उल्लेख कर दिया है। लेकिन यदि उन्होंने कोई बात प्रकट नहीं की तो वह है सन् १८५७ से १८५९ तक अर्थात् तीन वर्षों का जीवन-इतिहास, इन तीन वर्षों-के सम्बन्ध में उन्होंने स्वरचित जन्मचरित्र में इतना ही लिखा है कि **वह यह तीन वर्ष नर्मदा नदी के तट पर फिरते रहे**—और ये वे तीन वर्ष हैं, जिनकी खोज से जो कुछ मालूम हो सका है, अगले परिच्छेद में उसका उल्लेख किया जा रहा है। स्वामी दयानन्द के जीवन-इतिहास बहुत प्रकाशित हो चुके हैं। इसलिये हमने उनके घर छोड़ने के समय अर्थात् १८४६ से १८५६ तक का वृत्त सविस्तार लिखने की आवश्यकता नहीं समझी। केवल इतना ही वर्णन करना पर्याप्त समझा है कि उन्होंने इन दस वर्षों में शास्त्रीय एवं यौगिक ज्ञान की सब उपलब्धियां अपने ब्रह्मचर्य बल से प्राप्त कर ली थीं। असल में सन् १८५७ से १८५९ तक के तीन वर्षों में स्वामी दयानन्द की गति-विधियाँ ही उनके राजनीतिक जीवन की भूमिका हैं। ये तीन वर्ष भारत देश के राजनीतिक इतिहास में अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण हैं। इन्हीं वर्षों में देश-वासियों ने सशस्त्र क्रान्ति द्वारा अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने का प्रथम प्रयास किया था।

●

तृतीय परिच्छेद

स्वातन्त्र्य-क्रान्ति में महर्षि का योगदान

महर्षि दयानन्द का जन्म सन् १८२४ में हुआ था[1] महर्षि ने २२ वर्ष की आयु में अर्थात् सन् १८४६ में अपने घर को छोड़ दिया था। सन् १८४७ से लेकर १८५६ तक अपना सारा जीवन वृत्तान्त उन्हों ने स्वरचित जीवनी में प्रति वर्ष, प्रति महीना के हिसाब से सविस्तार लिखा है— जिस में उन की शिक्षा, तप, त्याग, योगाभ्यास आदि का पूर्ण रूप से वर्णन है। परन्तु महर्षि सन् १८५७, ५८, ५९, को छोड़ कर फिर अपना जीवन वृतान्त १८६० से शुरू करते हैं, जब वह प्रज्ञा-चक्षु श्री स्वामी विरजानन्द जी सरस्वती से शिक्षा-ग्रहण करने मथुरा पहुंचे। तदुपरान्त उन की गति-विधियों, प्रचार और सुधार कार्य के पत्ते बिल्कुल स्पष्ट हैं। तो फिर प्रश्न पैदा होता है कि महर्षि १८५७, ५८, ५९, इन तीन वर्षों में क्या करते रहे ? कहां रहे ? महर्षि ने स्वयं बस इतना ही लिखा है कि **मैं इन तीन वर्षों में नर्मदा के तट पर घूमता रहा** हूं। महर्षि का मात्र यही लिख देना किसी बड़े कार्य या रहस्य की पृष्ठ भूमि को व्यक्त करता है, जिस का वह वर्णन नहीं करना चाहते। महर्षि के इस रहस्य-मय जीवन काल को उजागर करने के लिये आज तक अनेक प्रयत्न हो चुके हैं और अनेक हो रहे हैं। विद्वानों ने महर्षि के जीवन पर जो भी ग्रन्थ रचे हैं, उन में इस पर

---

१. संयोग की बात कि भारत की स्वतन्त्रता के लिये प्रथम सशस्त्र-क्रान्ति का आयोजन करने वाले धोधो पंत नाना साहब का जन्म भी १८२४ में ही हुआ था। इस दृष्टि से भारत की स्वतन्त्रता के लिये मर मिटने वाले दोनों महापुरुष समसामयिक और समवयस्क भी थे। इन में से एक जब शस्त्र का सहारा लेकर राष्ट्र की स्वाधीनता की ज्योति को प्रज्वलित रखने में अपना सर्वस्व होम कर भी असफल रहा, तब दूसरे ने स्फुलिंगों को एकत्र कर उसे फिर से जगाने की विधि निकालने के लिये शास्त्रों का सहारा लिया।

विस्तार से विचार करने का कष्ट नहीं किया और इसे अछूता ही छोड़ दिया है, परन्तु किसी ने थोड़ा बहुत वर्णन किया है। इस में सन्देह नहीं, इस विषय में कई प्रयास हो रहे हैं। लेकिन यदि १८६० से १८८३ अर्थात् निर्वाण वर्ष तक महर्षि की समस्त गति-विधियों का ध्यान-पूर्वक अवलोकन किया जाये और उन के द्वारा रचित ग्रन्थों में से राष्ट्रियता-प्रचारक विचारों को संजोया जाय, तो कहना पड़ेगा कि इतनी प्रबल राष्ट्रियता की भावनायें उन के अन्तर में एक दम से तो फ़ूटी नहीं थीं। यह तो वर्षों तक पकाये और तपाये परिपक्व विचारों का ही परिणाम रूप थीं। सन् १८४६ से १८५६ तक महर्षि ने भारत के कोने-कोने में घूम फिर कर मस्तिष्क में जो कुछ जमा किया था— शेष जीवन में वह उन्हीं विचारों को प्रकट करते रहे। यह कैसे सम्भव था कि एक दूर-दर्शी महात्मा देश की धर्मान्धता से दुःखी हो, सामाजिक कुरीतियों को समूल पलटना चाहे, आर्थिक दुर्दशा पर आंसु बहाये, लेकिन देश की राजनीतिक दुरवस्था उस की पैनी दृष्टि से ओझल रहे और जातीय-जीवन के धार्मिक व सामाजिक सुधार के साथ-साथ वह राजनीतिक उथल-पुथल में योगदान न दें।

महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास में नरसी महता सम्बन्धी एक प्रश्न के उत्तर में ऐसा लिखा है—"**जब संवत् १९१४ अर्थात् सन् १८५८ में तोपों के मारे मन्दिर की मूर्त्ति अंग्रेजों ने उड़ा दी थी तब मूर्त्ति कहां गई थी ? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता दिखाई और लडे, शुत्रओं को मारा, परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इन के धुर्रे उड़ा देता और यह भागते फिरते। भला यह तो कहो कि जिस का रक्षक मार खाये, उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें।**"

मेरी इस पुस्तक की नींव महर्षि के उपरोक्त विचार ही समझ लीजिये। मैं यह समझता हूं कि उपरोक्त विचारों से दो निष्कर्ष सरलता से निकाले जा सकते हैं। पहला यह कि महर्षि क्रान्ति के दिनों में अंग्रेजों द्वारा ढ़ाये गये अत्याचारों से बड़े विक्षुब्ध थे और दूसरा यह कि महर्षि को उन दिनों की समस्त हलचलों का ज्ञान था। सन् १८५७ की स्वातन्त्र्य-क्रान्ति भारतीयों का अंग्रेजी शासन

के विरुद्ध प्रथम सशस्त्र विद्रोह था, जिसका संचालन देश के साधु महात्मा ही गुप्त रूप से कर रहे थे, जैसा कि अगली पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगा।

वैसे तो उपरोक्त उद्धरण ही इस बात का प्रबल प्रमाण समझा जाना चाहिये कि जागरूक महात्मा जो उन सब घटनाओं को जानते हैं वह उन से अछूते कैसे रह सकते थे और फिर इस पर यह बात कि वह इन तीन वर्षों अर्थात् ५७-५८-५९ में अपनी गति-विधियों पर मौन रह कर इस काल को रहस्य-मय बना रहे हैं। यदि उन की गति-विधियां सामान्य होतीं तो उन्हें वर्णन करने में संकोच क्या हो सकता था? भला जो व्यक्ति भांग तक पीने का अपना दोष स्वीकार करे, वह कोई बात छिपा कर कैसे रख सकता था। कहना पड़ेगा कि वह उन दिनों में अवश्य ही कोई असामान्य कार्य कर रहे होंगे, जिस का उल्लेख करना उन्होंने उचित नहीं समझा। भले ही हम इसका कारण यह समझलें कि वह इस सम्बन्ध में नीति से अंग्रेज की अत्याचारी दृष्टि से बचना चाहते थे, ताकि जिन कार्यों को उन्हों ने अपने जीवन में धारण करना था, उन से वह वंचित न रह जायें।

इस सम्बन्ध में जो कुछ मैं सामग्री एकत्रित कर सका हूं वह इस प्रकार है—

महर्षि दयान्द कुम्भ मेले पर संवत् १९११ (सन् १८५४) में हरिद्वार आये थे। वहां उन्हें एक ऐसे महान् सन्त का पता चला जो उन्हें विद्याध्ययन में सहायक हो सकते थे। उन का पुण्य-पवित्र नाम स्वामी संपूर्णानन्द सरस्वती था। वह महात्मा अपनी विद्वत्ता का सदुपयोग अर्थात् अध्यापन कार्य छोड़ कर भारत को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के प्रयत्नों में संलग्न थे। उन्हों ने महर्षि से कहा--"**दयानन्द जी ! मैं १०८ वर्ष का वृद्ध होने से अध्यापन कार्य करने में असमर्थ हूं। मथुरा में हमारे शिष्य विरजानन्द सरस्वती पढ़ा रहे हैं। आप का अभीष्ट मनोरथ वहां पूर्ण हो सकेगा।**" फिर उस वृद्ध सन्त ने अंग्रेजों के भारत में प्रवेश से लेकर अन्त तक सम्पूर्ण गाथा कह सुनायी। अंग्रेजों के अत्याचारों और भारतीय दुर्दशा का परमहंस विद्वान् संन्यासी ने वह चित्र खींचा कि महर्षि दयानन्द का मन द्रवित हो उठा और तत्काल वह कुछ निश्चय

न कर सके और वहां से विदा लेकर उत्तरा खण्ड की ओर चल दिये।

संवत् १९१२ (सन् १८५५) स्वामी दयानन्द जी ने काशीपुर होते हुये द्रोणसागर में व्यतीत किया। द्रोणसागर से उतरते हुये विदेशीय शासन से भारतीय दुर्गति के पारदर्शी महात्मा सम्पूर्णानन्द जी का स्मरण हो आया, जिन से वह एक वर्ष पूर्व कुम्भ के मेले पर मिल चुके थे। वे सीधे उन के चरणों में कनखल हरिद्वार आये। शिष्टाचार के उपरान्त महर्षि ने राष्ट्रोत्थान-सम्बन्धी बातचीत आरम्भ कर दी। वृद्ध सन्यासी ने कहा—**वत्स! भारत देश से विदेशी शासन को उखाड़ फैंकने के लिये नर्मदा तट पर सन्त-वर्ग एक रूपरेखा तैयार कर रहा है। वह सर्वथा गुप्त हैं। समस्त देश में निश्चित तिथि को नियमित समय पर उसका विस्फोटन होगा। विरजानन्द जी पहले ही मथुरा में ऐसे स्थान पर जा बैठे हैं जो रजवाड़ों के निकटवर्ती है। वह वहां से इस दिशा में अपना रंग दिखाने के लिये राजाओं से सम्पर्क स्थापित किये हुये हैं।[1] मुरसान, हाथरस के भूमिपति, भरतपुर, अलवर, करौली, जयपुर, और ग्वालियर के नरेन्द्र भी उनकी प्रेरणा पर अवश्य सहयोग देंगे। पंजाब भी इस कार्य में एक दशक से प्रयत्न-शील है। पेशवा नाना साहिब ने भी एक संगठित योजना बना ली है। इस प्रकार अन्य भारतीय जन भी अपना बलिदान करने के लिये तैयार हैं।**"

महर्षि दयानन्द ने इस आमूलबद्ध सज्जा को भारत का सौभाग्य समझा और सहर्ष निवेदन किया—**"भगवन्! ऐसी स्थिति में मेरा योग-दान भी नर्मदा-तट संगठन में ही श्रेयान् रहेगा। इस क्रान्ति काल में मेरा स्वामी विरजानन्द जी से विद्याध्ययन दुष्कर है।"**

पश्चात् उस वरिष्ठ महात्मा से आशीर्वाद लेकर स्वातन्त्र्या-

---

१. स्वामी विरजानन्द की उन दिनों की गति-विधियों का विस्तृत विवरण एक मुसलमान मीरमुश्ताक मीरासी के उन दो पत्रों से भली भांति मिलता है जो श्री चौ० कबूलसिंह जी महामन्त्री सर्वखाप पंचायत शोरम जिला मुजफ्फरनगर ने 'आर्य मर्यादा' साप्ताहिक के १२ अक्टूबर १९६९ के अङ्क में उर्दू लिपि में छपाये हैं। इन पत्रों को नागरी लिपि में परिवर्तित करके हम इस परिच्छेद के अन्त में दे रहे हैं।

कांक्षी महर्षि दयानन्द ने अपना मुख नर्मदा नदी की ओर कर दिया। उस समय इस क्रान्ति में डेढ़ वर्ष शेष था। अतः वह उसी कार्य-क्रम के अनुसार चलते हुये मुरादाबाद, सम्भल हो कर गढ़-मुक्तेश्वर पहुंचे।

अप्रैल १८५५ से, जब कि नाना साहब भारत का पेशवा बनने के बाद क्रान्ति-यज्ञ के समारम्भ में दीक्षित होने जा रहा था—महर्षि दयानन्द मार्च १८५६ तक गंगा के किनारे गंगोतरी और बद्रीनाथ से बनारस तक, गढ़वाल रुहेलखण्ड दोआब और काशी के प्रदेश में घूमते रहे। उन दिनों क्रान्ति की चिनगारियां जनता में भीतर ही भीतर फैलती रहीं। सन् १८५६ मई मास में वह नाना साहब के घर कानपुर गये और पांच मास तक कानपुर, इलहाबाद के बीच ही चक्कर काटते रहे। और फिर मार्च १८५७ में बनारस, मिरजापुर, चुनार हो कर जब क्रान्ति की तैयारियां लगभग पूर्ण हो चुकी थी और नाना साहब के सैंकड़ों सन्देश वाहक साधुओं, फकीरों आदि के रूप में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, देश के हर कोने में क्रान्ति का सन्देश लेकर रवाना हुये और स्वयं नाना साहब व अजीमउल्लाह भी क्रान्ति आरम्भ करने की तिथि निश्चित कर, उस की सारी तैयारी अपनी आंखों से देखने के लिये तीर्थ-यात्रा करने निकले, तब महर्षि दयानन्द भी, बनारस से मिर्जापुर, चुनार हो कर नर्मदा-स्रोत के लिये दीक्षण की ओर निकल पड़े।

सन् १८८० में महर्षि दयानन्द ने मेरठ में कहा कि वह गंगा-स्रोत से गंगासागर और रामेश्वरम् तक सारे भारत में पैदल घूमे थे। यदि जैसा कि उन्हों ने स्वयं घोषित किया—वह वैसा ही मान लिया जाए तो यह यात्रा उन्हों ने उन तीन वर्षों में ही की होगी, जिसका सम्पूर्ण वृतान्त देना उन्होंने उचित नहीं समझा। यही वह रहस्य-मय गुत्थी है जिसे सुलझाने के लिये अनेक विद्वानों ने प्रयत्न किये है और यह अकिञ्चन भी कर रहा है।

संवत् १९१४ (सन् १८५७) लग चुका था। वे नर्मदा पर रहस्य भरे आयोजन की गुप्त-मन्त्रणा में जा रहे थे, अतः उन्हों ने किसी से भी मार्ग न पूछने का प्रण किया। इस प्रकार महर्षि दयानन्द, नाना साहब और अजीमउल्लाह अपने-अपने निर्धारित मार्गों पर देश में परिस्थितियां देखने, योजना को कार्यान्वित करने तथा

ठीक समय पर विस्फोट हो, ऐसी धारणा से निरन्तर भ्रमण कर रहे थे, किन्तु दुर्भाग्यवश किन्हीं कारणों से क्रान्ति समय से पूर्व ही हो गई और अनेक नरेन्द्रों ने भी अपेक्षित सहयोग न दिया, फिर भी विद्रोह-ज्वाला की लपटों में अंग्रेजों की विपुल संख्या झुलस गई। नृशंस अंग्रेजी सेना ने मनुष्य-मन्दिरों और उन में स्थापित प्रतिमाओं को तोपों से उड़ाने में संकोच नहीं किया। भारतीय ललनाएं भी बहुलता से काल का ग्रास बनीं। महर्षि दयानन्द ने इस भीषण संकट को अपनी आंखों से देखा। और इसी काण्ड का उन्हों ने सत्यार्थ-प्रकाश में वर्णन किया है। यह सब असफलता मूर्त्तिपूजा के द्वारा जडबुद्धि हो जाने से अकर्मण्यता का निर्देशक है। यदि मूर्त्तिपूजा के स्थान पर देशवासी शूरवीरों की पूजा करते तो वह इस समय कदाचित् सहयोग भी देते। बाघेर लोगों की वीरता इस संबध में उल्लेखनीय बन गयी थी।

संवत् १९१४ की यह दुर्दशा महर्षि से देखी न गयी। उन दिनों भारतीयों का बहुत सा धन-जन लुट रहा था। अंग्रेज शासक जी तोड़ अत्याचार कर रहे थे। ऐसे विकट क्षणों में भारतीयों का मार्ग दर्शन करने के लिये ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में तैंतीस-वर्षीय महर्षि ने देश का भ्रमण किया।

रोहतक जिले के भालौठ ग्राम के चौधरी शेरसिंह के दादा नान्हें राम और सेहरा खाण्डा ग्राम के दो भाई भाड़े पर अपनी गाड़ी उत्तर प्रदेश में चलाते थे। जब उन्हों ने एक ग्राम से माल अपनी गाड़ी के लिये भर लिया तो बेगार लेने वाले अंग्रेजों ने गाड़ियां वहां ही खाली करवा लीं और लूट का माल गाड़ियों में भरवा लिया। जब गाड़ियां कुछ दूर पहुंचीं तो सामने से आते एक पुरुष ने गाड़ी वालों को चुपके से कहा—"**एक स्थान पर अंग्रेज बैलों को भी मार कर खा गये हैं तुम्हें ईश्वर बचायें।**" थोड़ी दूर चल कर दो भाईयों में से बड़ा भाई तो अवसर देख कर भाग निकला, गाड़ियां आगे चलती रहीं। कुछ दूर पहुंचने पर श्वेत वस्त्रों में दो मानव, जिन के विशाल शरीर थे, और जिन दो में से एक का गोल मुख और बलिष्ठ दिव्य देह थी, श्वेत घोड़ों पर सवार मिले। कहने लगे—"**तुम समय पा कर गाड़ियां छोड़ कर भाग जाओ। आगे बचने की आशा नहीं है।**" दोबारा ऐसा ही सन्देश

मिलने पर वह पूर्ण रूपेण चिन्तित हो उठे। सायं काल की वेला थी। उन्हों ने विश्राम के बहाने एक तालाब पर गाड़ियां रोकीं। ग्राम से भूसा लाने के बहाने वहां से भाग निकले और भागते हुये रुपयों की एक थैली चादर के नीचे छिपा कर ले गये। यह कहानी श्री नान्हें राम ने घर पहुंच कर सुनाई। भालौठ (रोहतक) आर्य समाज के प्रधान श्री शेरसिंह ने अपनी दादी से सुनकर कर आर्य समाज में बताई। पण्डित बस्तीराम ने महर्षि दयानन्द को कई बार देखा था। उन का कथन है कि दो अश्वारोहियों में से गोल मुख वाले महर्षि दयानन्द थे।

उन दिनों महर्षि दयानन्द यति पदाति ही बहुधा भ्रमण करते थे। वह प्रति दिन चालीस कोस चलते थे। स्वातन्त्र्य-क्रान्ति की इस असफलता के मूल तत्त्वों की गवेषणा में महर्षि दयानन्द का देशाटन अति गम्भीर था। भारतवासियों में विदेशियों की चाटुकारिता, स्वदेशीय गौरव का विस्मरण और निज पौरुष की हीनता का तीन वर्षों में अन्वेषण करके वह अपने क्रान्ति-स्रोत नर्मदा-तट पर फिर पहुंचे और अन्य संन्यासी वर्ग से भी अपने विचारों का सम्मिलन किया।[1]

मार्च १९६९ में यह अकिंचन भी जबलपुर से अमर कण्टक तक इसी निचार से गया था कि कहीं से महर्षि दयानन्द के उन तीन वर्षों की अज्ञात जीवनी का कोई अकाट्य प्रमाण मिल जाये। वहां आर्य समाजों में इस आशय के व्याख्यान भी दिये। कई एक मनीषी—वयोवृद्ध महानुभावों से निजी सम्पर्क भी स्थापित किये, परन्तु उल्लेखनीय कोई सामग्री उपलब्ध न हो सकी। हां, एक स्थान पर महर्षि दयानन्द का एक मूल चित्र देखने को मिला जो उस समय का था, जब वह जबलपुर के गंजीपुर आर्य समाज में विराजमान हुये थे।

एक बात और वहां के प्रधान श्री दालचन्द ने बताई कि उन्होंने किसी पुस्तक में यह भी पढ़ा है कि महर्षि **दयानन्द का**

---

१. उपरोक्त कई एक उद्धरण श्री पृथ्वीसिंह जी महता विद्यालंकार के ग्रन्थ 'हमारा राजस्थान' और श्री वेदानन्द जी वेद-वागीश की पुस्तक 'महर्षि दयानन्द' से लिये गये हैं।

खडगपुर फौजी विद्रोह में भी हाथ था जो स्वातन्त्र्य-क्रान्ति की विफलता के कई वर्ष बाद हुआ था।

जहां तक अज्ञात जीवनी की खोज का सम्बन्ध है, कलकत्ता आर्य-समाज के **आचार्य श्री दीनबन्धु वेद-शास्त्री बी० ए० भी इस ओर अत्यन्त प्रयत्न-शील है।** उन्होंने सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रमुख साप्ताहिक पत्र सार्वदेशिक में एक लेख माला चलाई है, जिसमें से दो तीन घटनायें १२ जनवरी ६९ के अंक में बड़ी महत्त्व-पूर्ण बताई हैं—

१. पहली घटना इस प्रकार है कि साधारण ब्राह्म-समाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण शील के घर से जो विवरण मिला है उस से जाना जाता है कि दयाराम (दयानन्द) ने साधु-संन्यासियों और तपस्वियों के अन्दर संगठन की कोशिश की थी, जिससे कि देश की दुरवस्था दूर की जा सके। स्वातन्त्र्य-क्रान्ति के अन्दोलन के साथ भी संयोग-स्थापन किये थे। **मराठी नेता नाना साहब भी महर्षि दयानन्द से विचार-विमर्श करने के लिये आये थे।** इस अंक के लेखक थे श्री अवन्तीकान्त चक्रवर्ती न्यायरत्न हैं।[1]

२. श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के प्रपौत्र श्री क्षमेन्द्रनाथ सुमन के गृह से विवरण मिलता है कि महर्षि दयानन्द ने ५ वर्ष का काल अवधूत के रूप में गंगोतरी से गंगासागर (बंगाल), गंगोतरी से सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक और सेतुबन्ध रामेश्वरम् से महाराष्ट्र के नाना स्थानों में भ्रमण किया। प्रधान-प्रधान सैन्यावासों में आया-जाया करते थे। **बैरकपुर (बंगाल) सैन्यावास में भी आये थे। मंगल पाण्डे नामक सैनिक (जिसने अंग्रेजों पर पहली गोली चलाकर क्रान्ति का सूत्र-पात किया था) ने उनसे आशीर्वाद मांगा था।** महर्षि दयानन्द इसके बाद मथुरा में स्वामी विरजानन्द से वेदादि ग्रन्थ पढ़ने के लिये चले गये, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री शिवचन्द्रराय विद्यार्णव।[1]

---

१. दो महानुभावों के नाम लेखक के रूप में देने का अभिप्राय यह है कि महर्षि उन दिनों संस्कृत में ही व्याख्यान दिया करते थे। उनका अनुवाद दूसरे विद्वान् करते थे। तब बा० केशवचन्द्रसेन के कहने पर महर्षि ने वस्त्र पहिनना और हिन्दी में व्याख्यान देना आरम्भ किया था।

नाना साहब की छतरी

इस सम्बन्ध में प्रचलित एक बात कि नाना साहब की समाधि नेपाल में बनी हुई है, का भी प्रतिवाद हो गया है और वह इस तरह कि श्री भगवान् देव टंकारा वाले ने आर्यनेता पं० रामगोपाल जी वैद्य को बताया कि नाना साहब की छतरी मोरवी नगर में मच्छु नदी के किनारे रेलवे लाईन के पास 'शंकर-आश्रम' में बनी हुई है। वैद्य जी ने यह बात पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक को बताई। उन्होंने अपने परिचित श्री इन्दुलाल पटेल (मोरवी) को पत्र लिखकर इसकी जानकारी मांगी। उनसे निम्न पत्र मीमांसक जी को प्राप्त हुआ—

"मोरवी आर्य-समाज के प्रमुख श्री पानाचन्द देवचन्द (अब अतिवृद्ध और सुनने समझने की बहुत कमी) छोटे थे, तब नदी पर स्नान करने जाते थे तो आते जाते शीतला माता के मन्दिर के पास नये ठहरे हुये सन्यासी के दर्शन करते थे। प्रसादी रूप शक्कर का देते थे। कुछ काल बाद नगर में अपने गृह लाये और ठहराये। संन्यासी ने गृहणी का असाध्य रोग मिटाया। संन्यासी ने कांच के ऊपर कुछ चित्र बनाये जो १८५७ के वीरों के थे। संन्यासी के लिये किये खर्च चोपड़े (बही) में लिखा मिलता है। मरण समय सन्यासी बोले—मैं नाना साहब पेशवा हूं। यह मेरी लकड़ी है। यह लो, आधी सोना मोहर से भरी है। ठाकुर बाघजी को देना और मेरा उचित अग्नि-संस्कार करने को कहना, इत्यादि। उनकी समाधि शंकर आश्रम शिवमदिर रूप में है। कांच के फोटू नगर रोड़ के घर में मौजूद हैं। दो तीन टूट गई हैं।

वर्तमान 'नगर रोड' का नाम 'चन्द्रकान्त' है। उनके दादा के समय की बात है। गुजराती साप्ताहिक पत्र 'साधना' रेडक्रास रोड अहमदाबाद में लेख माला नाना साहब के विषय में आई थी। उसमें उनके बारे में कुछ नवीन बातें थीं। मोरवी के नगर रोड के घर पर जो चित्र हैं, मैंने अम्बालाल बापा के साथ देखे थे। चित्र वाटर कलर के हैं।"

(तिथि नहीं लिखी) **इन्दुलाल पटेल**

अब यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि नेपाल में नाना साहब की समाधि की बात स्वयं अंग्रेजों ने अपनी अस-

फलता को छिपाने के लिये फैलाई थी। तान्त्या तोपे को फांसी देने के बाद नाना साहब उनके हाथ नहीं आये और उन्होंने प्रसिद्ध कर दिया कि वह नेपाल भाग गये हैं, बात प्रचलित है कि क्रान्ति की असफलता के बाद महर्षि दयानन्द ने उन्हें मोरवी भेज दिया था और वहीं उनका देहान्त हुआ, एवं छतरी बनी।

प्रयत्न यह हो रहा है कि ऊपर लिखे गये महर्षि दयानन्द के स्वातन्त्र्य-क्रान्ति में योगदान सम्बन्धी प्रमाणों के अलावा और भी प्रमाण हमें मिल जायें, जिस से महर्षि दयानन्द की सन् १८५७-५८, ५९ की गति-विधियां स्पष्ट रूप में उजागर हो जायें और आर्य-समाज सगर्व महर्षि को 'राष्ट्रियता के सूत्रधार' के रूप में प्रस्तुत कर सके। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है सन् १८६० से १८८३ तक तो उनके राष्ट्रिय जीवन व प्रचार, से उनके ग्रन्थों व पत्रों के पन्ने भरे पड़े हैं। केवल एक ही घटना जिससे उनके राष्ट्र-प्रेम, निर्भीकता, और सत्यवादिता का प्रमाण भली-भांति मिल जाता है–मैं यहां उद्धृत करता हूं--

सन् १८७२-७३ में महर्षि दयानन्द कलकत्ता में ब्रह्म-समाज से मिलकर प्रचार कर रहे थे। वहां के लाट पादरी प्रायः इनके भाषणों में सभापति का आसन ग्रहण किया करते थे। महर्षि अपने व्याख्यानों में जब दूसरे धर्मों की आलोचना करते तो साथ ही प्रायः यह भी कह देते कि अंग्रेजी राज्य में मुझे विचारों के प्रकट करने में किसी प्रकार का भय नहीं है। इससे पादरी महोदय ने प्रभावित होकर उस समय के वायसराय लार्ड नार्थ ब्रुक को सुझाव दिया कि यह महात्मा बड़े काम का व्यक्ति है। इसे अपनी ओर करने से अंग्रेजी राज्य को बहुत लाभ पहुंचेगा। इस पर वायसराय महोदय ने उनसे बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। निश्चित समय पर महर्षि दयानन्द उनके राजकीय भवन में मिलने गये। उनके मध्य बातचीत कराने के लिये दुभाषिये का प्रबन्ध था। जो बातचीत हुई, उसका विवरण निम्न प्रकार है—

हिन्दी अनुवाद

लार्ड नार्थ ब्रुक गवर्नर जनरल व वायसराय से सन् १८७३ में ऋषि दयानन्द की निम्न प्रामाणिक व रेकार्ड हुई भेंट सम्पन्न

हुई, जिस में स्वामी जी की असाधारण दूरदर्शिता तथा देश-भक्ति का परिचय मिलता है। यह भेंट इङ्गलैंड के लार्ड बिशप द्वारा आयोजित की गई थी, जो कलकत्ता में ठहरे हुये थे। यह श्रेष्ठ ईसाई पादरी, कुछ वार ऋषि दयानन्द की भाषण-सभाओं में अध्यक्ष भी बन चुका था और स्वामी जी की अद्वितीय विद्वत्ता का बड़ा भारी समर्थक था। इस भेंट से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए स्वामी जी के हृदय में विद्यमान दृढ़तम भावना का प्रमाण मिलता है। यह भेंट दुभाषिये के द्वारा हुई थी।

साधारण शिष्टाचार के पश्चात् वायसराय ने स्वामी जी से पूछा—पण्डित दयानन्द ! मुझे सूचना मिली है कि आप के द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना, उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न करती है और आप के विरुद्ध भयानक विचार उत्पन्न करती है, विशेषत: मुसलिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं ? अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं ?

स्वामी दयानन्द—मुझे अपने विचारों के प्रचार करने की अंग्रेजी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी प्रकार का खतरा नहीं है।

वायसराय—यदि ऐसा ही है तो क्या अपने देश में अंग्रेजी-शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे ? और अपने व्याख्यानों के आरम्भ में जो ईश्वर प्रार्थना आप किया करते हैं, उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिये प्रार्थना भी किया करेंगे ?

स्वामी दयानन्द—मैं ऐसी किसी बात को मानने में असमर्थ हूं, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राजनीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। श्रीमान् जी ! ईश्वर से नित्य सायं प्रातः उसकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही मैं प्रार्थना करता हूं।

ऋषि दयानन्द के राजनीतिक विचारों के इस प्रकार प्रदर्शन से वायसराय घबरा गये और तुरन्त वार्त्तालाप बन्द कर दी।

लार्ड नार्थ ब्रुक ने यह घटना अपनी एक साप्ताहिक डायरी इण्डिया आफिस लण्डन में भेजी और मलका सरकार के सेक्रेटरी आफ स्टेट को लिखा कि उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी करने के लिये गुप्तचर नियुक्त करने के आदेश दे दिये हैं।

(दीवान अलखधारी अम्बाला निवासी के सौजन्य से

केवल इतना ही नहीं, महर्षि दयानन्द का स्थान-स्थान पर देशीय नरेशों को राजधर्म की शिक्षा देना, उनके संगठन के लिए प्रयत्न करना, अपने सब ग्रन्थों में राष्ट्र-धर्म का प्रचार करना, निस्संदेह ऐसी बातें हैं, जिनसे महर्षि का सारा राष्ट्रिय कार्य-क्रम देदीप्यमान है, शासन का सहयोग न होने से या आर्य-समाज की इस सम्बन्ध में कुछ उदासीनता से महर्षि के कार्य-क्रमों एवं गति-विधियों का यह पक्ष छिपा हुआ अवश्य है, लेकिन तथ्य जोर-जोर से कह रहे हैं कि १८८४ में जन्मी कांग्रेस स्वतन्त्रता-प्राप्ति का श्रेय भले ही लेती रहे, लेकिन यदि अंग्रेजी कुटिलता महर्षि को हमसे असमय में ही पृथक् न करवा देती तो देश उन्नीसवीं शताब्दी में ही स्वतन्त्र हो गया होता। अंग्रेज ऐसे उग्रवादी देश-भक्त को सहन कैसे कर सकता था। उसने जोधपुर में षड्यन्त्र द्वारा महर्षि को हमसे सदा के लिये पृथक् कर दिया।[1]

गुरु विरजानन्द जी से सम्बद्ध असली पत्र
अगले पृष्ठ पर परिशिष्ट में देखें

१. तीसरा परिच्छेद 'भारतीय-साहित्यकार-संघ' की इतिहास परिषद् गोष्ठी, जो आर्य-समाज अनारकली में १० अगस्त को हुई थी, में पढ़ा गया।
—वासुदेव वर्मा

तृतीय परिच्छेद का परिशिष्ट

गुरु विरजानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में मीर मुशताक मिरासी के असली पत्र

[नागरी लिपि में परिवर्तित]

बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

सन् १८५६ बमुताबिक संवत् १९१३ को एक पंचायत मथुरा के तीर्थ गाह पर मुवैकिद हुई उसमें हिन्दू मुसलमान और दूसरे मजहब के लोगों ने शरकत की थी इस पंचायत में एक नबीना हिन्दू दरवेश को लाया गया था एक पालकी में बिठाकर उनके आने पर सब लोगों ने उनका अदब किया जब यह चौकी पर बैठ गया तब हिन्दू मुसलमान फकीरों ने इनकी कदम बोसी की इसके बाद सब हाजरीन पंचायत के लोगों ने उनका अदब किया सब के अदब के बाद नाना साहब पेशवा मौलवी अजीमुल्ला खान रंगू बाबू और शहंशा बहादुरशाह का शहजादा इन सबने इनके अदब में कुछ सोने की अशरफियां पेश की। इसके बाद एक हिन्दू एक मुसलमान फकीर ने यह कहा कि हमारे उस्ताद साहिबान की जबान मुबारिक से जो तकदीर होगी उसे तसल्ली के साथ सब साहिबान सुनें और वह मुल्क के लिये बहुत मुफीद साबित होगी और यह वली अल्लाह साधु बहुत जबानों का आलिम और हमारा और हमारे मुल्क का बुजुर्ग हैं खुदा की मेहरबानी से ऐसे हमें मिले यह खुदा का हम पर बड़ा अहसान हैं।

दरवेश की तकरीर का आगाज

सबसे पहले उन्होंने खुदा की तारीफ की और फिर उर्दू में उसका तरजुमा किया इस बुजुर्ग ने यह कहा था कि आजादी जन्नत है और गुलामी दोजख है अपने मुल्क की हकूमत गैर मुल्क की

हकूमत के मुकालवे में हजार दर्जे बेहतर है दूसरों की गुलामी हमेशा बे इज्जती और बेशरमी का बायस है हमें किसी कौम से और किसी मुल्क से कोई नफरत नहीं हैं हम तो खलके खुदा की बहबूदी के लिये खुदा से रोज दुआ मांगते हैं मगर हुकमराह कौम खासकर फिरंगी जिस मुल्क में हकूमत करते हैं उस मुल्क के बाशन्दों के।

बिस्मिल्लाह उर्रहानुर्रहीम

साथ इन्सानियत का बरताव नहीं करते और कितनी ही भी अच्छाई की तारीफ करें मगर उस मुल्क के बाशंदों के साथ मवेशियों से गिरा हुआ बरताव करते हैं खुदा की खलकत में सब इन्सान भाई-भाई हैं मगर गैर मुल्की हुकमराह कौम इन्हें भाई न समझ कर गुलाम समझती हैं किसी भी मजहब की किताब में ऐसा हुक्म नहीं है कि अशरफुल्मखलूकात के साथ दगा की जावे और अल्लाह के हुक्म के खिलाफ वरजी की जावे इस वास्ते मातहत लोगों का न कोई इमान हैं न कोई उनकी शान हैं फिरंगियों में बहुत सी अच्छी भी बात है मगर सियासी मसले में आकर वह अपने कौल फेल को न समझकर फौरन बदल जाते हैं और हमारी अच्छाई और नेक सल्लाह को फौरन ठुकरा देते हैं इस असिल बजूहात यह है कि हमारे मुल्क को वह अपना वतन नहीं समझते हैं हमारे मुल्क का बच्चा-बच्चा उनकी खैर खवाही का दम भरे फिर भी अपने वतन के कुत्ते को हमारे इन्सानों से अच्छा समझते हैं यह सब कर्मा का बायस है इन्हें अपने ही वतन से मुहब्बत है इसलिये मैं सब बाशिन्दगान हिन्द से इलतजा करते हैं कि जितना वह अपने मजहब से मुहब्बत करते हैं उतना ही इस मुल्क के हर इन्सान का फर्ज है कि वह वतन परस्त बनें और मुल्क के हर बाशिन्दे को भाई-भाई जैसी मुहब्बत करे तब तुम्हारे दिलों के अन्दर वतन परस्ती आ जायगी तो इस मुल्क की गुलामी यहां से खुद ब खुद जुदा हो जायगी हिन्द के रहने वाले सब आपस में हिन्दी भाई हैं और बहादुरशाह हमारा शहंशाह है।

तसनीफ करदह मीर मुश्ताक मिरसी-कासिद् सर्व खाप पंचायत

नोट:—महात्मा संन्यासी का नाम मालूम किया तो इनका नाम सुवामी बिरजानन्द था और बहुत अरसे से मथुरा में रहते हैं और संस्कृत की तालीम देते हैं और अल्लाह ताला के मौतकिद है।

बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

संवत् १९१३ विक्रमी में यह पंचायत दूर दराज जंगल में की गई थी और शुरै भादू का माह था यह पंचायत चार रोजतक मतवातर होती रही पहले दिन आने वाले सब महमानों की एक दूसरे से मुलाकात कराई गई थी दूसरे दिन हजरत आदम से लेकर हजरत मुहम्मद रसूल सले अल्लाह अलेह व सलम तक सवाने अमरी सुनाई गई तीसरे दिन राम किरशन और महात्मा बुध और शङ्कराचार्य महावीर स्वामी अतेन ऋषि और मुनि और राजा महाराजाओं के जिन्दगी के दास्तानों पर रोशनी डाली गई और गैर मुल्की वतन परस्तों और खुदा परस्तों याद दिलाई गई और चौथे दिन नाबीना संन्यासी महात्मा विरजानन्द जी और मुसलमान साई मियां महमूदन शाह ने शुरु में विरजानन्द जी की तकरीर से पहले शुरुआत की आज के दिन तकरीर में खास-खास लोगों की ही जमायत थी और न खुफिया सरकारी आदमी इसमें नहीं था। नाबीना महात्मा की तकरीर बहुत ही पुर जोर थी और हर मजहबी इल्म से ताल्लुक रखती थी और डेढ़ घण्टे तक।

बिस्मिल्लाह उर्रहमानुर्रहीम

तकरीर होती रही मैं ने इन की तकरीर के खास-खास इलफाज तहरीर किये हैं बाकी उन्होंने हर पहलों हर रोशनी डाली थी जब महात्मा विरजानन्द को पालकी में बिठा कर लाया गया उस वक्त हिन्दु मुसलमान फकीरों ने उन की खुशी में शंख घड़नावल नागफणी निकाडा तुरही और नरसिंघे बजाये थे और खुदा परस्ती और वतन परस्ती के गीत गाये थे यह नाबीना साधु गैर इल्म के समझने की ताकत रखता था और खुदा का जलवे जुलाल इसकी जबान से जाहिर होता था मैं ने भी अपनी रूह के तकाजे के मुताबिक ५ फूल इन के सामने पेश किये और उनकी कदमबोसी की और खुदा से दुआ मांगी कि खुदा ऐसी नेक रूहों को खलकत की भलाई के लिये हमेशा पैदह कीजिये।

चतुर्थ परिच्छेद

राष्ट्रियता-प्रचारक स्वामी दयानन्द

ऋषि दयानन्द सरस्वती जान चुके थे कि अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभावों के कारण देशी राज्यों में से आर्य आदर्श लुप्त हो चुके हैं। वे रियासतों के प्रबन्धकों की त्रुटियों को बहुत भली प्रकार जानते थे और वे चाहते थे कि—

(क) आर्य राजा संस्कृत पढ़ कर प्राचीन आदर्श को पुनर्जीवित करें।

(ख) आर्य राजाओं के समस्त राज्य संचालक संस्कृत पठित और इसी आदर्श के मानने वाले हों।

(ग) राज-वर्ग के बालक आरम्भ से आर्य शिक्षा प्राप्त करें अंग्रेजी आदर्श न सीखें।

(घ) रियासतों में मनु का धर्म-शास्त्र प्रचलित हो और नया कानून न चले।

(ङ) रियासतें आर्य संस्कृति की रक्षक बनें।

(च) रियासतें नष्ट न हो जायें, उनका अस्तित्व बना रहे। उन में प्रजातन्त्र का वर्तमान निकृष्ट रूप प्रचलित न हो, प्रत्युत मनु-प्रदर्शित राज-नियम ही चलें।

(छ) राजवर्ग व्यसनी न हों और पितृवत् प्रजा-पालन करे।

(ज) रियासतों में गो-रक्षा का पूरा ध्यान रखा जाये। रियासतों का सब काम संस्कृत व आर्य भाषा में हो।

(झ) क्षत्रिय वर्ग में प्राचीन क्षात्र आदर्श स्थिर रहें और यज्ञ-याग बहुत हों। इस के लिये क्षात्र-शालाएं स्थापित की जायें।

उपरोक्त विचारों को लेकर ही महर्षि ने जीवन के लगभग ६ वर्ष राजस्थान में देशी राजाओं के सुधार के लिये प्रयत्न किया।

राज्य-सत्ता को शिक्षा से विभूषित कर वह प्रजा का कल्याण चाहते थे।

ऋषि दयानन्द पहले पुरुष थे, जिन्हें भारत की देशोन्नति और स्वराज्य का यथार्थ ध्यान आया। उनके प्रत्येक व्याख्यान एवं पत्रों में **देशोन्नति** का शब्द दिखाई देता है, उन्हों ने ही **स्वराज्य** शब्द का पहले पहल प्रयोग किया और स्वराज्य का उपाय भी आरम्भ किया। उन का स्वराज्य संसार पर सांस्कृतिक विजय द्वारा आता। इस में उनका अटल विश्वास था। अतः भारत का स्वराज्य ला कर महर्षि संसार की राज्य व्यवस्था को ठीक करते।[1]

पत्रों के सार

यहां श्री महाराणा जी प्रति दिन मिलते और समागम करते हैं। और एक मौलवी से प्रश्नोत्तर प्रति दिन होते हैं और वे लिखे भी जाते हैं। अभी महाराणा जी से दो एक बार **गोरक्षार्थ सही आदि** कराने के विषय में बात चीत हुई है। आशा है यह कार्य सिद्ध हो जायगा। —उदयपुर, भाद्र शुदी ६, १९३९,

श्रीयुत महाराणा जी दूसरे तीसरे दिन समागम करते हैं और उपदेश सुन कर बहुत से व्यसन अर्थात् दिन का सोना, रात्रि में न सोना, दिन चढ़े उठना इत्यादि बहुत बातें छोड़ दी हैं और अच्छी-अच्छी बातों को ग्रहण करते जाते हैं।

—उदयपुर, आश्विन ११, सं० १९३९।

श्रीयुत आर्यकुल-दिवाकर अत्यन्त प्रेम से आते हैं और उपदेश सुनकर हर्षित होते हैं। कई हानिकारक बातें छोड़ दी हैं और सर्व सुख-दायक बातें ग्रहण कर ली हैं। आशा है श्री स्वामी जी के प्रताप से यह देश भी पवित्र हो जायगा। गोरक्षार्थ यहां भी सही हो गई है।

—उदयपुर, रामानन्द ब्रह्मचारी उदयपुर, आश्विन १४, सं० १९३९

यहां उदयपुर का समाचार अतीव प्रशंसनीय है। श्रीमान् आर्यकुल-दिवाकर महाराणा जी बहुत योग्य हैं। उन्होंने हमारे

---

१. पं० भगवद्दत्त बी० ए० द्वारा रचित ग्रन्थ "स्वामी दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" की भूमिका से उद्धृत।

उपदेशानुसार अपनी दिनचर्या, राज्य-कार्य और धर्म-कृत्य भी करना आरम्भ कर दिया है। सायं प्रातः मेरे पास आया करते हैं। प्रातः काल कुछ योग और **राजनीति** की शिक्षा होती है और सायंकाल दर्शन शास्त्रों के उपयोगी विषय पढ़ते हैं। उनके अमात्य वर्ग भी पढ़ते हैं —उदयपुर, मार्गशीर्ष ५, सं० १९३९

श्रीयुत आर्यकुल-दिवाकर उदयपुराधीशों के अत्याग्रह से अब हमें १५ माघ तो यहां रहना होगा। छः शास्त्रों का विषय तो पढ़ा दिया है अब मुख्य जो **राजनीति** का विषय है, उसके मनुस्मृति के ७ वें से ९ वें अध्याय तक पढ़ावेंगे।

—उदयपुर, पौष १४, सं० १९३९

हम उदयपुर से फाल्गुन ७ को प्रातः काल चल कर रात को चितौड़ पहुंच गये, उदयपुर में हम आनन्दित रहे। महाशयों की प्रीति दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई। मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय पर्यन्त **राज-धर्म** सब यथातथ्य पढ़ा। अन्य बहुत से महाभारतस्थ विदुर-प्रजागर तथा ६ शास्त्रों के मुख्य-मुख्य विषय, थोड़ा सा व्याकरण और अन्वय की रीति भी पढ़ ली। जैसा कि राजाओं को सत्य-प्रतिज्ञ पुरुष-परीक्षक और गुणज्ञ तथा स्वगुण-दोष के मानने वाले होने चाहियें, वैसे श्रीमान् महाशयार्य्य कुल-दिवाकरों को मैं ने देखा। बहुत **से राजा मुझ से मिले।**

वो जो प्रसिद्ध वा रहस्य में **राज-धर्म**, ईश्वर तथा वैदिक धर्म प्रचार और शरीर—**राजनीति** आदि विषयों में उपदेश मैंने किया है, उसका आचरण बहुत सा कर लिया और करने की प्रतिज्ञा भी की है। —चितौडगढ़, फाल्गुन, १० सं० १९३९

उदयपुर से फाल्गुन ७ को हम चितौड़ और अब त्रयोदशी के दिन शाहपुरा पहुंचे हैं। यहां महाराजाधिराज व्याकरण का विषय पढ़ कर कल मनुस्मृति के सप्तम अध्याय **राज-धर्म** पढ़ना आरम्भ करेंगे। बड़े बुद्धिमान् तथा **राजनीतिज्ञ** प्रजापालन में तत्पर साहसी उत्साही और बुद्धिमान् हैं।

—शाहपुरा, फाल्गुन ९, सं० १९३९

मैं आनन्द पूर्वक जोधपुर आने का निमन्त्रण स्वीकार करता हूं। मुझ को दृढ़ विश्वास इस बात से हुआ कि अब आर्यावर्त्त की

उन्नति होने का समय आ गया है, जब श्रीमान् जोधपुराधीश आदि की वैदिक सत्य-धर्म और सनातन **राजनीति** पर प्रीति हुई है। पुनः हम लोगों की उन्नति होने का समय आया है। मैं सर्व-शक्तिमान् जगदीश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आप की उन्नति कृपा कटाक्ष से सदा किया करें और **स्वदेशोन्नति** में आप सब लोगों को दृढ़ोत्साह हो कर के आप लोगों के द्वारा सब आर्यावर्त्त देश की बढ़ती करा के महापुण्य के भागी आप लोगों को करे।

यहां श्रीमान् महाराजाधिराज मनुस्मृति **का राज-धर्म** पढ़ रहे हैं, सात आठ दिन में पूरा हो जायगा।

मैं जैसा सत्य-धर्म की उन्नति और स्वदेश का उपकार होने से प्रसन्न होता हूं वैसा किसी अन्य बात पर नहीं।

—शाहपुरा, वैशाख ६, सं० १९४०

एक नूतन समाचार यह है कि श्रीमान् जोधपुराधीशों की आज्ञा से श्रीयुत महाराजे प्रतापसिंह, श्रीयुत राव राजा तेजसिंह जी और बाहारट अमरदान जी ने मुझे शीघ्र जोधपुर बुलाने के लिये पत्र भेजा है। श्रीयुत महाराजाधिराज जी का पढ़ना रह जायेगा मनुस्मृति के तो तीन अध्याय हो जायेंगे किन्तु शास्त्रों का विषय रह जायगा। तथापि श्रीमानों की अनुमति से जाना होगा।

--शाहपुरा, वैशाख ६, सं० १९४०

उदयपुर-नरेश के लिये न्याय सम्बन्धी नियम—

जब न्यायस्थान पर जावे तब सब प्रजास्थ वादि-प्रतिवादि साक्षी राजपुरुष सम्प्रेक्षक आदि मनुष्यों को प्रसन्न-वदन कृपा-दृष्टि से आनन्दित करे। दक्षिण हाथ उठा कर सब को स्वास्थ्य अभयदान देकर न्यायासन पर बैठ सर्वव्यापक यथावत् न्यायकारी अन्तर्यामी को मन से नेत्रोन्मीलन करके प्रार्थना करे कि हे परमेश्वर ! आपकी कृपा-दृष्टि हो, जिससे मैं चाहता हूं कि कभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकादि के वश हो के अन्याय न करूं। ऐसा अनुग्रह आप भी कीजिये। परन्तु इस बात को सदा ध्यान में रखे कि सब कामादि और अन्याय में फंसाने वाला लोभ है। उसको अपने से और आप उससे सदा दूर रहे। उस समय न किसी का शत्रु और न किसी का मित्र तथा उदासीन बने। किन्तु समदृष्टि कि जैसा पक्षपात छोड़ परमेश्वर व

आप्त पुरुष सब के साथ वर्तता है, वैसे वर्ते। प्रत्येक सप्ताह में गुरु-वार के (दिन) ऋणादानादि में विवाद अर्थात् दिवानी का न्याय करे और रविवार के दिन साहसिकों अर्थात् फौजदारी का न्याय करे। जब अर्थी व प्रत्यर्थी अथवा साक्षी जो कुछ स्वभाव से बोले, उस पर अतीव ध्यान देकर विचार करे। और उनको कठिन से कठिन शपथ करावे। सब साक्षियों को पृथक्-पृथक् रखे। सीखावट की साक्षी को न माने। और यह भी जना देवे कि मिथ्या बोलने, मानने और करने वाले को इस जन्म और पर जन्म में सुख व प्रतिष्ठा नहीं होती। और देखो, थोड़े से जीवन में धर्मात्मा, अर्थात् सत्यवादी, सत्यमानी मनुष्य धर्मार्थ काम मोक्ष फलों को प्राप्त होता और मिथ्यावादी, मिथ्यामानी, अनृतकारी सर्वदा दुःख को प्राप्त होता है इस लिये किसी को आत्मा और परमेश्वर के मिथ्या भाषणादि से शत्रु न बनना चाहिये। जैसा कुछ तुम्हारी आत्मा में हो, वैसा ही जीभ से बोलो। जब वे कुछ भाषण करें, वह सब लिपिबद्ध होवे और उनके नेत्र तथा मुखाकृति की ओर देख कर भीतर के आशय को पहिचाने। यदि कोई बड़ा ढ़ीठ व प्राड्विवाक् अर्थात् बारिष्टर व वकील जो कुछ परस्पर प्रश्नोत्तर करें, उस पर ध्यान देकर सुने व लिखे। यदि जहां-जहां कुछ उचित हो पूछे। यदि इतने पर भी सत्य असत्य का निर्णय न हो तो उन पर विश्वास न कर के जहां वह विरुद्ध कार्य हुआ हो वहां के सुपरीक्षित धार्मिक पुरुष, स्त्रियों की साक्षी में स्त्री जनों से पूछ कर निश्चय करे। परन्तु स्त्रियों से राणी पूछें। अथवा यदि पड़दे में रखे तो बड़े प्रबन्ध से रख कर पूछे कि वहां उस के बदले दूसरी स्त्री न बोले। यदि सामने हो तो न कोई उस पर दृष्टि डाले, न हास्य करे और न डरावे। इतने पर भी सत्यासत्य का निर्णय न हो तो गुप्त में उनको बात करते सुन अथवा धार्मिक आप्तजन दूतों के द्वारा निश्चय करे। पश्चात् जो अपराधी हो उस को यथायोग्य दण्ड देकर हरावे और अनपराधी का मान्य कर जितावे। जो हारे, उस पर ताना न मारे किन्तु ऐसा कहे कि देखो भाई मैं तेरे से ऐसा काम करने की आशा न करता था। तुम ने ऐसे कुल अथवा ऐसे के पुत्र हो कर ऐसा अनुचित काम किया, इस पर मुझे बड़ा शोक है। हे भद्र! यदि तू ऐसा काम न करता तो ऐसे दण्ड को प्राप्त क्यों होता। यदि कोई धूर्त कोई बुरा शब्द बोले व कुचेष्टा करे, सह लेना, परन्तु अपने

शरीर की रक्षा सब प्रकार से करना और सबकी मानसी व बाह्य चेष्टा को जानते रहना। चाहे कोई कितनी ही प्रार्थना करे व करोड़ रुपये भी दे कर अन्याय कराया चाहे तो भी कभी अन्याय न करे। यही राजा के प्रताप, कीर्ति, श्री और राज्य बढ़ाने वाला कर्म है। सप्ताह के दो दिन में पूर्वोक्त दो काम करने, मंगल के दिन किसी राजपुरुष से वा अन्य राज्य से प्रजास्थ व राजजन पीड़ित हुये हों उनकी बातें और तीन दिन बुद्ध, शुक्र और शनि में सब राज्य की उन्नति और स्वास्थ्य के लिये प्रबन्धार्थ अकेले व मुख्य धार्मिक स्वराज्य-भक्त मन्त्रियों के साथ विचार करना चाहिये।

सदा सनातन वेदशास्त्र आर्यराज, राजपुरुषों की नीति पर निश्चित रह कर इनकी उन्नति तन-मन-धन से सदा किया करें। इन से विरुद्ध भाषाओं की उन्नति न करे न करावे। किन्तु जितना दूसरे राज्य के सम्बन्ध में यदि वे इस भाषा को न समझ सकें, उतने ही के लिये उन भाषाओं का यत्न रखे, जो वह प्रबल राज्य हो।

रावराजा तेजसिंह जोधपुर को भेजा पत्र—

क्योंकि जो कुछ अपने आर्य्यावर्त देश की उन्नति है सो सब आप ही लोगों के द्वारा अवश्य हो रही है और होगी। अन्य किसी के द्वारा नहीं, क्योंकि यथाराजा तथाप्रजा, राजा और राजपुरुषों के सत्य-धर्म-युक्त उत्तम पुरुषार्थ ही से सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं। —शाहपुरा, बैसाख १३, १९४०

महाराजा प्रतापसिंह जी जोधपुर को भेजा गया पत्र—

मुझको इस बात का बहुत शोक होता है कि जोधपुराधीश आलस्य आदि में वर्तमान, आप और बाबा साहब दोनों रोग युक्त शरीर वाले हैं। अब कहिये, इस राज्य का जिसमें सोलह लाख से ऊपर मनुष्य बसते हैं, उनकी रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप उठा रहे हैं। सुधार और बिगाड़ भी आप तीनों ही महाशयों पर निर्भर है। तथापि आप लोग अपने शरीर का आरोग्य संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं, यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझसे सुनके सुधार लेवें, जिससे मारवाड़ तो क्या आर्य्यावर्त देश

भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनी ही देश की उन्नति होती है।

आषाढ़ ३, सं० १९४०

महाराधिराज शाहपुरेश को--

आषाढ़ ७ के दिन सर्वाधीश महाराजा जोधपुराधीश पधारे थे। दो घंटे तक बात-चीत कर और उपदेश सुनकर और प्रसन्न होकर पीछे पधार गये। आषाढ़ ११, सं० १९४०

जोधपुर नरेश के नाम—

'यदि आप मद्यपान आदि दुर्गुणों नहीं छोड़ते और **राज्य-पालन** कर्म में कम से कम ६ घण्टे परिश्रम और महालक्ष्मी रूप स्वपत्नियों से अधिक प्रेम नहीं करते—इत्यादि शोचनीय बातें आप में हैं। "आप अपना प्रमुख्य समय मद्य वेश्या-संग में न लगा के **न्याय-धर्म से** प्रजा पालनादि शुभ कर्मों में व्यय करके धन्यवादार्थ सर्वत्र सत्कीर्ति हूजिये। —स्थान जोधपुर, जुलाई मास

उदयपुर नरेश के नाम—

प्रतापसिंह जी और राव राजा तेजसिंह जी उदयपुर में श्री-मन्महोदयों को मिलने के लिये कहते थे। अनुमान है कि पूना से वहीं आवेंगे। यदि आवें तो अच्छी प्रकार आप शिक्षा करेंगे। इसमें कहना व लिखना क्या है। किन्तु आर्य-राजोत्कर्ष, वैदिक-धर्म की उन्नति करने आदि का उपदेश यथायोग्य कीजियेगा।

—जोधपुर, श्रावण १२, १९४०

श्रीयुत बारहट कृष्ण जी के नाम—

उदयपुर का सब वर्तमान सुनकर अत्यानन्द हुआ। परन्तु थोड़ी सी बातें लिखता हूं जो श्रीमान् महाशयों को दृष्टि-गोचर करा देना, अन्य किसी को नहीं। सभा में बैठकर जैसे दिनचर्या में लिखा है—बराबर न्याय करना चाहिये। उसमें आलस्य कभी न हो। --जोधपुर-भाद्र ८ सं० १९४०

जोधपुर नरेश के नाम—

अब मैं यहां बीस पच्चीस दिन रहना चाहता हूं यदि कोई नैमित्तिक प्रतिबन्धन होगा। मैंने यह समझा है कि यहां आकर

आपका धन व्यय व्यर्थ कराया क्योंकि मुझ से आपका उपकार कुछ भी नहीं हुआ और आपकी ओर से मेरी सेवा यथोचित होती रही। इसीलिये जब-जब मुझे अवकाश मिलता है तब-तब पत्र द्वारा कुछ निवेदन कर देता हूं। आप मेरे निवेदन को सुनकर प्रसन्न होते हैं इसीलिये तीसरी बार लेख करने के लिये मुझको समय मिला।

१. जैसा राजकार्य आजकल आप कर रहे हैं वैसा ही यावत् शरीर रहे तावत् करते रहियेगा। न्याय से राज्य का पालन करना ही आप लोगों का परम धर्म है।

२. आप अपने पुत्र जो कि राजकुमार हैं, उनको खाने पीने से संकोचित मत रखियेगा। सदा पाव भर गाय के दूध में मासा भर सोंठ को मिलाकर छानकर थोड़ा सा गर्म कर ठंढा करके ब्रह्मी औषधी के साथ पिलवाते रहिये जिसमे महाराजकुमार के बुद्धि बल पराक्रम और आयु विद्या बढ़ती रहे। उसकी शिक्षा के लिये किसी मुसलमान व ईसाई को मत रखियेगा। नहीं तो महाराज-कुमार भी इनके दोष सीख लेंगे और आपकी सनातन राजनीति को न सीखेंगे। न वेदोक्त धर्म की ओर उनकी निष्ठा होगी। क्योंकि बाल्यावस्था में जैसा उपदेश होता है वही दृढ़ हो जाता है।

३. महाराजकुमार के सब संस्कार वेदोक्त करायेगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रखके प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या जो कि सनातन आर्ष ग्रन्थ हैं, जिन के पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महालाभ प्राप्त हो, इन दोनों को पढें।

४. जो एक रत्न आपके बन्धु महाराजे प्रतापसिंह जी हैं उनको कभी राज्य-कार्य से पृथक् मत कीजियेगा। क्योंकि ऐसा पुरुष आपका और राज्य का हितैषी दूसरा नहां दीखता।

४. इस देश में वर्षा प्रायः न्यून होती है इसके लिये यदि आप मेरे कहे अनुसार एक-एक वर्ष में १०,००० रुपयों का घृतादि का नित्यप्रति और वर्षा काल में चार महीने तक अधिक होम करावेंगे तो सम्भव है कि देश में रोग कम और वर्षा अधिक हुआ करे।

५. आप में औदार्यादि प्रशंसनीय बहुत गुण हैं। इनको यदि राजनीति में प्रवर्त रखें तो देश का सौभाग्य और श्रीमन्महाशयों की पृथिवी भर में उत्तम कीर्ति फैल जावे।

६. एक वेश्या से जो कि नन्नी कहाती है, उसका अधिक संग रखना आप जैसे महाराजों को शोभा नहीं देता । ऐसे दूषित कर्म राजाओं के लिये महाविघ्न-कारक, धन, आयु, कीर्ति और राज्य को नाश करने वाले होते हैं। मुझको बड़ा आश्चर्य है कि आप बड़े बुद्धिमान् और शौर्यादि गुण युक्त होकर इनसे पृथक् क्यों नहीं होते ।

७. आपका शरीर ऐसा क्षुद्र काम और विषयासक्ति व आराम के लिये नहीं है किन्तु बड़े परिश्रम, न्याय, पुरुषार्थ से लाखों मनुष्यों के हितार्थ आप लोगों का शरीर है । देखिये मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम व नवम अध्यायों में राजाओं के लिये क्या-क्या कर्त्तव्य अकर्त्तव्य लिखे हैं । जोधपुर, ८ सितम्बर, सन् १८८३

"जो मनुष्य परोपकार और देशोपकार करने के योग्य नहीं वह कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते और कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो सकता, जब तक वह अपने देश के उपकार को अपना पहला काम न समझता हो।" —दयानन्द

देहली के केसरी दर्बार के समय देश के सुधारकों की एक कान्फ्रेन्स स्वामी जी की प्रेरणा से उनके स्थान पर हुई थी। वह हमें स्वामी जी के देश—हित की भावना का परिचय देती है। स्वामी ने उसमें कहा था—

"हम लोग एक मत हो जावें और एक रीति से देश का सुधार करें तो आशा है देश शीघ्र ही सुधर सकता है।"

उसी समय स्वामी जी ने स्वदेशीय वस्तु के प्रचार का एक विशेष व्याख्यान दिया ।

—जीवनचरित्र, पं० लेखराम लिखित पृष्ठ २६४

जिस समय यूनान का प्रसिद्ध यात्री मेगैस्थनीज आर्य्यावर्त में आया उसने लिखा— उस समय तक देश में गुरुकुल की मर्यादा प्रचलित थी। लोग **राजाज्ञा** से अपने बच्चों को गुरुकुल में भेज दिया करते थे। ३२ वर्ष की आयु में वह पढ़कर घर को गृहस्थ के लिये वापस आते थे और उस समय उनकी शादी की जाती थी ।

—मैगस्थनीज द्वारा लिखित

स्वामी जी आर्यों से दो बातों की अपेक्षा करते थे—पहली यह कि संस्कृत के वेत्ता **स्वदेशीय मनुष्योन्नति** के अभिलाषी, परोपकारी, निष्कपट, सत्य-विद्या-प्रचारक, धार्मिक विद्वानों की एक उपदेशक मण्डली हो और दूसरी वेदादि सब शास्त्रों के पढ़ने के लिये पाठशालायें हों। —हरिद्वार कुम्भ के मेले में विज्ञापन

"यवनों को **राज्य-प्रबन्ध कार्य** नहीं देना चाहिये क्योंकि वह दासी-पुत्र हैं।" - रायपुर (राजपूताना) के ठाकुर को उपदेश

"संसार के शुरू से लेकर महाभारत तक चक्रवर्ती राजा आर्य कुल में ही हुये थे। अब उनकी सन्तान का अभाग्योदय होने से राज्य से च्युत होकर विदेशियों के पांव तले कुचले जा रहे हैं"

—सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ११

देखो, जब आर्यों का राज्य था, तब यह अत्यन्त लाभ-दायक पशु गऊ आदि, नहीं मारे जाते थे। तब ही भारत और दूसरे देशों में (जो भारत के अधीन थे) लोग बड़े प्रसन्न थे क्योंकि गऊ आदि पशुओं से दूध घी बहुत पैदा होता था और अनाज की भी कमी न थी, जब से मांस-भक्षी और मदिरा-पान करने वाले विदेशी शासक राज्य-सत्ता संभाल बैठे हैं, तब से बराबर भारतवासियों के दुःख में वृद्धि ही होती जाती है।" —सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १०

"हे भगवन्! हम सब लोग नीतिवान्, परमपुरुषार्थी, प्रीतिमान् रक्षक, परस्पर सहायक, एक दूसरे का दुःख न देख सकने वाले सज्जन हों। नाथ! हम इस संसार में सबसे अधिक प्रकाशित हों। हे जगदीश्वर! हम परमवीर, पराक्रमी, निष्कण्टक, चक्रवर्ती राज्य को भोगें। —आर्याभिविनय से।

राजधर्म-विषयक व्याख्यान

मनु महाराज की सन्तान से इक्ष्वाकु राजा हुआ। इसलिये नहीं कि वह राजकुल में पैदा हुआ था अथवा उसने बलात्कार से राज्य उत्पन्न किया था। उसे सारे लोगों ने उसकी योग्यतानुकूल राज-सभा में अध्यक्ष पद पर बैठाया। उस समय सारे लोग वैदिक व्यवस्थानुकूल चलते थे। भृगु जी[1] ने यह सारी व्यवस्था प्रकट की

---

१. मनुस्मृति में। मानव-धर्म-शास्त्र भृगु-प्रोक्त माना जाता है।

है। इस व्यवस्था के सम्बन्ध में मनु के सातवें-आठवें और नवें अध्याय में जो राज्यों की व्यवस्था बतलाई है, उसे देखो। केवल राजा के ही हाथ में किसी प्रकार का हुकम चलाने की शक्ति न थी। वह तो केवल राजसभा के अध्यक्ष के अधिकार चलाता रहता। राज्यों की व्यवस्था कैसी थी—उसे संक्षेप से इस स्थल पर कहता हूं। ग्राम, महाग्राम, नगर, पुर, ऐसे-ऐसे देशविभाग रहते थे। ग्रामों में सौ-सौ घर, महाग्रामों में हजार, नगर में दस हजार और पुर में तो इससे भी अधिक घरों की संख्या रहती थी। दस ग्राम पर एक दशेश, शत ग्राम पर एक शतेश और सहस्र ग्राम पर सहस्रेश नाम का अधिकारी। दस सहस्र पर महासुशील, नीतिमान् ऐसा एक ही अधिकारी रहता था। लिखने पढ़ने के कामों में अनुभवशील ऐसे सब देशों में गुप्त दूत बात-मियां (खबरें) पहुंचाने के लिये तथा अधिकारी लोग कैसा अधिकार चलाते थे— इसका शोध रखने के लिये चारों ओर फिरते रहते थे। यह काम पुरुष और स्त्रियां भी करती थीं। राज्य के चार प्रकार के अधिकारी होते थे—राज्याधिकारी, सेनाधिकारी, न्यायाधिकारी, और कोषाधिकारी। इक्ष्वाकु राज्यसभा का प्रथम अध्यक्ष था। यदि सभा के विचार में दो पक्ष आ पड़ते, उस स्थल पर निर्णय करने का काम अध्यक्ष का था। देश में भिन्न-भिन्न जाति की सभायें थीं—उनमें राजार्य सभा ही मुख्य थीं। और धर्म-सभायें अर्थात् परिषदें भी स्थल-स्थल पर थीं। दस विद्वान् विराजे बिना परिषद् सभा नहीं होती थी। न्यून से न्यून तीन विद्वानों के आये बिना तो सभा का काम चलता ही न था। धर्माधर्म का विवेचन और उपदेश ही धर्मसभा का अधिकार था। परीक्षा और शिल्पोन्नति की ओर भी इस सभा का ध्यान रहता था। न्यूनाधिक के विषय राजार्य सभा को विदित करके उस सभा की ओर से दण्डादिक की व्यवस्था होती थी। सेना के सिपाही लोगों को आज्ञा मानना ही मुख्य कर्त्तव्य कर्म है, ऐसा बतलाकर उन्हें धनुर्वेद सिखलाते थे। 'कवायद' क्या है' यह आर्य लोगों को विदित न था— ऐसा अंग्रेजी पढ़े हुये लोग कहते हैं परन्तु यह कहना पागलपन है। मकरव्यूह, बकव्यूह, बलाकव्यूह, सूचीव्यूह, शूकरव्यूह, चक्रव्यूह इत्यादि कवायद के नाना प्रकार प्राचीन काल में आर्य लोगों को विदित थे। और सैन्य में की भिन्न-भिन्न टोलियों पर दशेश, शतेश, सहस्रेश ऐसे अधिकारी रहते थे और उस समय

के उनके हथियार अर्थात् शक्ति, असि, शतघ्नी, भुशुण्डी आदि होते थे। अंग्रेजी लोगों में अब तक व्यूह रचना का पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ है। थोड़ी बहुत कवायद करते हैं, इसी से वे प्राचीन लोगों से कुशल हैं ऐसा तुम्हें प्रतीत होने लगा है। 'निरस्तपादपे देशे एरण्डोपि द्रुमायते' यह कहावत सत्य है।

पहले समय में जो युद्ध में मरता, तो उस के लड़के-बालों को वेतन मिला करता। और युद्ध प्रसंग में जो लूट मिलती उसे नियत समय पर व्यवस्था से बांट लिया करते। सैन्य की योग्य व्यवस्था के सम्बन्ध से उस समय बहुतेरे कार्यों की ओर ध्यान दिया करते और समस्त ऐश्वर्य्य का मूल कारण सेना है, यह जान सेना में के लोगों को कोई प्रकार की चिन्ता व कष्ट न होने देते थे। यदि सेना में कोई बीमार पड़ता तो उस की उत्तम रक्षा होती थी—विशेष चिन्ता होती थी।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥

श्रेष्ठ पुरुषों और राजा को गरीबों की अपेक्षा सहस्र पण (हजार गुणा) दण्ड अधिक दिया जाता। राजा लोग मुनि लोगों के साथ धर्म वाद करने में समय लगाते रहते। इस प्रकार इक्ष्वाकु के समय में राज्य-व्यवस्था थी। इक्ष्वाकु राजा इस प्रकार का सुशील, नीतिमान्, सूझ, जितेन्द्रिय, विद्वान् और गुण-संपन्न राजा था। इन दिनों हमारे राजा लोगों को खुशामदियों की चण्डाल-चौकडी ने घेरा हुआ है, फिर सहज ही राजाओं में सारे दुर्गुण वास करते हैं, इस में आश्चर्य ही क्या हैं। बस, सारांश यह कि यह हमारे आर्यावर्त का दुर्दैव है।

(उपदेश-मञ्जरी—नवां व्याख्यान)

दूसरे स्थल पर

राज-सभा के विषय में मनु जी कहते हैं—

अपने राज्य और देश में उत्पन्न हुये, वेद व शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर, कवि, गृहस्थ, अनुभव कर्त्ता, सात अथवा आठ धार्मिक, बुद्धिमान्, मन्त्री राजा को रखने चाहियें। क्योंकि

सहाय के बिना साधारण काम भी एक को करना कठिन हो जाता है। फिर बड़े भारी राज्य का काम एक से कैसे हो सकता है। इसलिये एक को राजा बनाना और उसी की बुद्धि पर सारे काम का बोझ रखना बुद्धिमानी नहीं है। निदान महाराजा को उचित है कि मन्त्रियों सहित ६ बातों पर विचार करे—मित्र और शत्रु में चतुरता, अपना स्थान, शत्रु के आक्रमण से देश की रक्षा, विजय किये हुये देशों का स्वास्थ्य, प्रत्येक विषय पर विचार करके यथार्थ निर्भय से जो कुछ अपनी और दूसरों की भलाई की बात विदित हो, न्याय करना।

पुराने राजा युद्ध करने वाले सिपाहियों की रक्षा अपने पुत्र की तरह करते थे। इसलिये उन सिपाहियों को युद्ध करने में बड़ा भारी उत्साह होता था। इन विचारांशों पर सब राजा लोग चलते थे और सब सामान व देश की रक्षा करते थे और उन के लिये खजाना जमा करने में लगे रहते थे। मनु जी ने युद्ध में जय के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है और युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुये सिपाहियों के हक भी बतलाऐ हैं।

(उपदेश-मञ्जरी—दसवां व्याख्यान)

पञ्चम परिच्छेद

स्वामी दयानन्द की आर्थिक सुधार-योजना

राष्ट्रिय-पीड़ा से पीड़ित दयानन्द

१. गोवध-निवारण

स्वामी दयानन्द ने १८८२ में बम्बई से दो लाख लोगों के हस्ताक्षर कराके एक प्रार्थना-पत्र साम्राज्ञी विक्टोरिया के नाम भिजवाया और आशा प्रकट की कि उनकी प्रार्थना पर वह भारत में **गोवधबन्द** कर देगी। इस से अंग्रेज सरकार और भी उन से चिढ़ गयी।

१८७५ में स्वामी दयानन्द फर्रुखाबाद पहुंचे। उत्तर प्रदेश के छोटे लाट म्योर और प्रान्त के शिक्षा-विभाग के निर्देशक कमिन महोदय से मिलाप हुआ। बात चीत में आप ने लाट साहब से कहा कि आप अपने देश को जाने वाले हैं। वहां जाकर आप भारतीय मन्त्रि-मण्डल में शामिल होंगे तो इस में भारत के हित का ध्यान रखिये और **गोवध बन्द** कराने का प्रयत्न कीजिये।

२. आर्य-भाषा का प्रचार

सन् १८७० में स्वामी दयानन्द पंजाब का दौरा कर रहे थे। वहां उनसे आग्रह किया गया कि यदि आप अपने ग्रन्थों का अनुवाद उर्दु—फारसी में कर दें, तो बहुत लोग लाभ उठा सकेंगे। स्वामी ने उत्तर दिया कि दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक हिन्दी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्य्यावर्त्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिये ही अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।

हरिद्वार में एक दिन महाराज अपने आसन पर बैठे सत्सङ्गियों को समझा रहे थे। बीच में एक सज्जन ने निवेदन किया—"यदि आप अपनी पुस्तकों का अनुवाद कराकर फारसी अक्षरों में छपवा दें तो पंजाबादि प्रान्तों में जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते, उनको आर्य धर्म के जानने में बड़ी सुविधा हो जाये।"

महर्षि ने उत्तर दिया—"अनुवाद तो विदेशियों के लिये हुआ करता है। नागरी के अक्षर थोड़े दिनों में सीखे जा सकते हैं। आर्य भाषा का सीखना भी कोई कठिन काम नहीं है। फारसी और अरबी के शब्दों को छोड़कर ब्रह्मावर्त की सभ्य भाषा ही आर्य भाषा है। यह अति कोमल व सुगम है। जो इस देश में पैदा होकर अपनी भाषा सीखने में कुछ भी परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उसमें धर्म-लग्न है, इसका भी क्या प्रमाण है? आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं परन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही प्रचार होगा। मैंने आर्यवर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिये ही अपने सकल ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।" (दयानन्द-प्रकाश, पृष्ठ ३८८)

३. देशीय दुर्दशा की पीड़ा

बरेली में महात्मा मुंशीराम के पिता के घर स्वामी जी ठहरे हुये थे। एक दिन आधी रात को वह जाग पड़े। उनके पांव की आवाज सुन कर घर वालों की भी नींद खुल गई। उन्होंने स्वामी जी से व्याकुलता का हाल पूछा, वैद्य बुलाने का प्रस्ताव रखा, परन्तु स्वामी जी ने उत्तर किया—

"मेरा दुःख औषधि से दूर नहीं होगा। मेरी पीड़ा भारत के परिश्रमी लोगों की दुर्दशा के चिन्तन से चित्त में उत्पन्न हुई है। ईसाई लोग कोल-भील आदि भारतवासियों को ईसाई बना रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहाते हैं, परन्तु आर्य जाति कुम्भकरण की नींद में सोई पड़ी है। उसके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। मै अब चाहता हूं कि राजों महाराजों को सन्मार्ग पर

लाकर जाति का सुधार करूं और जाति को एक उद्देश्य रूपी सुदृढ़ सूत्र में बांध दूं।"

४—भारतवासियों को कला-कौशल सिखलाने का प्रयत्न

महर्षि के जीवन के अन्तिम वर्षों में, उन के धर्म-प्रचार और समाज-सुधारादि उदात्त उद्देश्यों में, भारतवर्ष में शिल्प कला का विस्तार करना भी सम्मिलित हो गया था। वे इसके लिये पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने अपने पश्चिमी शिष्य वीस महाशय को लिखा था कि आप भारतवासियों को शिल्प कला सिखाने का प्रयत्न कीजिये। महर्षि के पत्र के उत्तर में जर्मन देश-निवासी श्रीमान् जी. ए. वीस ने जो पत्र लिखे—उनके कुछ अंश यहां दिये जाते हैं जिन से स्पष्ट हो जायगा कि महाराज स्वदेश-वस्तु-प्रचार में कितने सचेष्ट और सच्ची रीति से सचेष्ट थे।

अपने २९ जून १८८० के पत्र में श्रीमान् वीस महाशय लखते हैं[1]—

जो-जो विषय आप के विद्यार्थियों के प्रयोजन के लिये सबसे अधिक उपयोगी और आवश्यक प्रतीत होते हैं, वे सब हम उन्हें सिखा देंगे। साधारण विद्यार्थियों की अपेक्षा, जिन के सामने ऐसा कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता, हम आप के विद्यार्थियों की विशेष शिक्षा पर अधिक ध्यान देंगे। कृपया लिखिये कि इस प्रस्ताव के विषय में आप की क्या सम्मति है। इस विषय में आप खुल कर विचार लिखिये। हम ऐसे प्रबन्ध करने के लिये सदा उद्यत हैं, जो आप के देशवासियों के लिये व हमारे लिये सन्तोष जनक हों।"

उसी सन् की ३० जून को वे फिर लिखते हैं—

"यदि आप दूर-दर्शिता से आरम्भ करें और प्रारम्भ में ही सीमातीत शीघ्रता से काम न लें तो मैं समझता हूं कि काल क्रम में भारत की मण्डी में अपने प्रति-द्वद्वियों को पराभव कर देने का आप के पास अच्छा अवसर है, क्यों कि आप को कुछ एक ऐसी सुविधायें प्राप्त हैं जो उन के पास नहीं हैं, एक तो आप के देश

१. अगले उद्धरण हमने श्री स्वामी सत्यानन्द जी विरचित 'दयानन्द-प्रकाश" से लिये हैं। प्रकाशक—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।

में दैनिक वेतन सस्ता है। दूसरे आप के देश में सूक्ष्म काम को कुशलता से करने के, साधारणतः युरोपियनों की अपेक्षा अधिक प्रवीण व परिश्रमी जन मिल जाते हैं। तीसरे बहुत से युरोपियनों की अपेक्षा आप लोगों का आचार अच्छा है। आप अपने ग्राहकों को सस्ती और निकम्मी वस्तुएं दे उनका रुपया नहीं बटोरेंगे। आप जीवन में, वाणिज्य में और कला-कौशल में निर्दोष नियम का पालन करेंगे। आप जब चाहें अपने विद्यार्थियों को हमारे पास भेज दें, जितना शीघ्र भेजें, उतना ही उत्तम है। क्योंकि हम उनको उनके अध्ययन के भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के अनुसार काम में लगाने के लिये तत्पर हैं।"

उन्होंने फिर लिखा--

"मेरे इस पत्र का उद्देश्य आपको इस बात की सूचना देना है कि मैंने आप के नवयुवक देश-बन्धुओं को ऐसे स्थानों में भेजने के विषय में और भी अधिक पूछ-ताछ की। वे विविध कलायें और व्यवसाय अत्यन्त क्रियात्मक और वाचनिक रीति से सीख सकते हैं। हम आप के अनुयायी आर्य विद्यार्थियों को सारी उपयुक्त कलायें और वस्तुयें सिखलाने के लिये अपनी रक्षा और देख-रेख में लेने के लिये बड़े उत्सुक हैं। यहां वे इन कलाओं को स्वदेश अथवा किसी अन्य देश की अपेक्षा अधिक उत्तम रीति से सीख सकेंगे। अपने उद्देश्य और सफल होने और गौण तथा निष्फल बातों में रत होने अथवा जिन बातों को वे जानना और सीखना चाहते हैं उनकी समीचीन व्याख्या और उपदेश के न मिलने से अपना बहु-मूल्य समय नष्ट न करने के लिये ऐसे विद्यार्थियों को सबसे बढ़ कर ठीक पथ-प्रदर्शकों का प्रयोजन है, जो अपनी पूरी योग्यता से उन्हें मार्ग दिखायें, उन्हें परामर्श दें और उन्हें पढ़ायें। आर्य विद्यार्थियों को मैं यही काम देना चाहता हूं। उनकी ओर मैं प्राण और आत्मा में एक आध्यात्मिक सम्बन्ध द्वारा आकर्षण अनुभव करता हूं। मैं अपने नवयुवक भारतीय मित्रों की देख-रेख और विकास पर पूर्ण ध्यान दूंगा। उनको मैं किसी दूसरे की देख-रेख और रक्षा में कदापि नहीं छोड़ूंगा, इसके लिये चाहे मुझे अपने युरोपीय विद्यार्थियों की रक्षा और शिक्षा के निमित्त दूसरों को भी नियुक्त करना पड़े।"

वीस महाशय ने ३० सितम्बर सन् १८८० को फिर लिखा—

"आपके पुत्र हम से भौतिक कलायें और अन्य विद्यायें तथा शिल्प-कर्म सहर्ष सीख सकते हैं। हमें आपकी उन्नति की डाह नहीं है। मैं निर्धन माता-पिताओं के पुत्र लेने और उनको अपने सर्वोत्तम पुरुषों से शिक्षा दिलाने के लिये समुद्यत हूं। कालान्तर में ज्यों-ही हमारी आय इस योग्य हो जायेगी, जब आप कहेंगे, तो मैं आपके कुछ निर्धन विद्यार्थी ले लूंगा। उनको बहुत-थोड़े शुल्क पर अथवा बिना शुल्क शिक्षा दूंगा और उनकी उन्नति के लिये सहायता दूंगा।"

श्रीमान् वीस के पत्रों के ऊपर दिये अंशों से भली-भांति प्रकाशित होता है कि महर्षि दयानन्द भारत में **शिल्प-कला** का विस्तार करने के लिये बड़ा भारी उद्यम कर रहे थे। वे विदेश में कला-कौशल सीखने के लिये एक मण्डली भेजना चाहते थे।

अवतर्राणका—पृष्ठ ८, ९

५—राष्ट्र-नीति पर व्याख्यान

मुरादाबाद के कलेक्टर स्पेडिंग महाशय ने एक दिन श्री-सेवा में निवेदन किया कि आप राष्ट्रनीति पर एक व्याख्यान देना स्वीकार कीजिये। उसका सारा प्रबन्ध मैं आप करूंगा। महर्षि ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। कलेक्टर महाशय ने छावनी में व्याख्यान का प्रबन्ध किया और लोगों के प्रवेश के लिये टिकट वितरण कर दिये। नगर के सज्जनों और सब आर्य्य जनों को टिकट मिल गये। नियत समय पर महर्षि ने भारतीय और युरोपियन सज्जनों को सम्बोधन करते हुये राष्ट्रनीति के उदात्त सिद्धान्त का निरूपण किया। शासकों और शासितों के सम्बन्ध बताये, शासन-नीति के पक्षपात आदि दोषों का वर्णन किया।

उनका यह व्याख्यान कई घण्टों तक होता रहा और देशी-विदेशी सब दत्तचित्त होकर सुनते रहे। समाप्ति पर स्पेडिंग महाशय ने खड़े होकर धन्यवाद पूर्वक स्वामी जी की प्रशंसा की और कहा—स्वामी जी ने जो कुछ वर्णन किया हैं, वह सर्वथा सत्य है। यदि इस नीति के अनुसार राजा-प्रजा के सम्बन्ध होते तो जो कष्ट हल-चल में उठाने पड़े हैं, वे कभी सामने न आते।"

(दयानन्द-प्रकाश, पृष्ठ ३९५)

स्वामी जी महाराज अपने प्रेमियों में बैठकर अपने जीवन की कुछ बीती-बातें भी सुनाया करते थे। एक दिन उन्होंने सुनाया कि एक स्थान में हमारा भाषण सुनकर वहां के कलेक्टर ने कहा कि आपके भाषण पर यदि लोग चलने लग जायें तो इसका यह परिणाम निकलेगा कि हमें अपना बदना-बोरिया बांधना पड़ेगा। मैंने कहा कि मेरा तात्पर्य आप सर्वथा नहीं समझे। मेरे कथन का सारांश यह है कि मूर्ख और पण्डित का वास्तव में मिलाप नहीं होता। इसलिये जब तक भारत की जनता सुशिक्षादि गुणों से आप के जोड़ की न हो जाये, तब तक परस्पर के सम्बन्ध का सुख नहीं हो सकता। इस पर कलेक्टर ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

(दयानन्द-प्रकाश, पृष्ठ ४४५)

६—एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य

उदयपुर में स्वामी जी के एक भक्त ने एक दिन निवेदन किया कि महाराज! भारत का पूर्ण हित कब होगा? स्वासी जी ने उत्तर दिया—"एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना भारत का पूर्ण हित और जाति की उन्नति होना कठिन है। मैं चाहता हूं कि देश के राजे, महाराजे अपने शासन में सुधार करें और राज-धर्म, भाषा और भावों में एकता उत्पन्न करें, फिर भारतवर्ष में आप सुधार हो जायगा।"

७—अन्तिम चरण

स्वामी जी महाराज ने सात आठ महीने उदयपुर में रहकर महाराज को व जनता को **राज-धर्म** व वैदिक धर्म की खूब शिक्षा दी। १८८३ में जोधपुर जाने लगे तो आर्य लोगों न वहां की परिस्थितियां बताकर रोकना चाहा, तो स्वामी जी ने कहा—"यदि वह लोग मेरी उंगलियों की बत्तियां बनाकर जला देंगे, तो भी कोई परवाह नहीं, मैं वहां जाकर सदुपदेश अवश्य करूंगा।"

स्वामी जी को विष किसने दिया

प्रकट में तो स्वामी जी का सेवक जगन्नाथ ही इस पाप का दोषी है परन्तु राजा नाहरसिंह के कथनानुसार वह स्वामी जी की

मृत्यु के बाद भी उनके घर में उपस्थित था, तो प्रश्न पैदा होता है कि विष दिया किसने? बात कुछ ऐसी प्रतीत होती है कि स्वामी जी के इस्लाम-खण्डन से मुसलमानों में खलबली मची हुई थी। अंग्रेज सरकार पहले ही उनके विरुद्ध थी और गुप्तचर-विभाग उन पर कड़ी दृष्टि रखता था। उनकी मृत्यु का समाचार भी सर्व प्रथम राजस्थान गजट में ही प्रकाशित हुआ। उनका इलाज भी मुसलमान डा० अली मरदान खां करता रहा, जिससे हालत सुधरने की अपेक्षा बिगड़ती ही गई। अंग्रेज मेडीकल अफसर ने डा० लक्ष्मण-दास को भी आबूरोड से बदलकर अजमेर भेज दिया। इन सब घटनाओं से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वामी जो को विष देने और ठीक उपचार न होने देने में डा० अली मर्दान खां व राजस्थान के मेडीकल आफीसर का षड्यन्त्र था और यह सब अंग्रेज सरकार के इशारे से हुआ।

षष्ठ परिच्छेद

स्वामी दयानन्द की राजनीतिक विचारधारा

१. स्वतन्त्रता का प्रथम आन्दोलन-कर्त्ता

सत्यार्थप्रकाश जो कि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज ने संवत् १९३९ (सन् १८८२) में स्थान महाराणा जी का उदयपुर में लिख कर प्रकाशित किया, उसमें स्वतन्त्रता की विचारधारा को नीचे लिखे शब्दों में लिखा है –

१. आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतन्त्र, स्वाधीन और निर्भय राज्य इस समय नहीं है जो कुछ है सो भी **विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है।** कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई कितना ही करे परन्तु **जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।** (स० प्र० समु० ८ पृ० १४१)

२. माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ **विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।**
(स० प्र० समु० ८ पृ० १४१)

३. सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती, सार्वभौम आर्यकुल में ही हुए थे। **अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं।**
(स० प्र० समु० ११ पृ० १७३)

२. आपस की फूट से सर्वनाश

स्वामी जी महाराज ने आपस की फूट के कारण देश का सर्वनाश माना है। उनके हृदय में इस परस्पर फूट को देखकर बड़ा दुःख होता था। उन्होंने महाभारत काल से लेकर अभी तक भारत में फूट को ही दुःख का कारण माना है। स्वामी जी को दिवंगत हुए

८६ वर्ष हो चुके हैं, परन्तु भारत की हिन्दू-समाज में फूट दिन प्रतिदिन बढ़ी है घटी नहीं यही। कारण है कि संख्या, बुद्धि, बल, धन, शक्ति के होते हुए भी, हम अल्प संख्या वालों से हर समय पराजित होते हैं। आर्य-समाज जिसे स्वामी जी महाराज ने इस फूट के रोग को नाश करने के लिये स्थापित किया था, वह स्वयं ही फूट का शिकार हो गई है। हर समाज, संस्था, प्रतिनिधि व सार्वदेशिक सभा में हम देखते हैं कि परस्पर वैमनस्य और फूट के कारण हानि हो रही है। क्या आर्य-समाजी ऋषि की इस दुःख भरी वेदना को पढ़कर समाज और देश से इस राक्षसी फूट को नष्ट करने का यत्न नहीं करेंगे? औरों का उद्धार क्या कर सकेंगे, जब स्वयं ही झगड़े में संलग्न रहेंगे। नीचे स्वामी जी महाराज के हृदय की वेदना से पूर्ण वाक्यों को पढ़े—

१. विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना-पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषण आदि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं।

(स० प्र० समु० १० पृ० १६६)

२. **जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।** क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्ष पहले हुई थीं, उनको भी भूल गये? देखो, आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यनाश हो गया। सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। **न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा।** उसी दुष्ट दुर्योधन, गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे यह राज-रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय। (स० प्र० १० समु० पृ० १६६-१६७)

३. स्वायम्भव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् **आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये।** (स० प्र० ११ समु० पृ० १७२)

४. हे परमेश्वर! स्वदेशस्थ आदि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर, प्रीतिमान्, पाखण्ड-रहित करें। अन्योन्य प्रीति से परम-

वीर्य, पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों।

(आर्याभिविनय-- द्वितीय प्रकाश, मन्त्र १)

५. ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया, **क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह ?**

(स० प्र० समु० ११ पृ० १७४)

६. हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें और हम सब लोग परम प्रीति से मिल के सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्ती राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आपके अनुग्रह से सदा भोगें। हे प्रीति के उत्पादक ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे **हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें, किन्तु एक दूसरे के मित्र हो के सदा वर्तें।**

(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ईश्वर-प्रार्थना विषय)

७. जब नाश होने का समय निकट आता है, तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं कोई उनको सूधा समझावे तो उल्टा माने और उल्टा समझावे उसको सूधी मानें। जब बड़े-बड़े विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत में मारे गये और बहुत से मर गये, तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। **ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, आपस में करने लगे।** जो बलवान् हुआ वह देश को दाबकर **राजा बन बैठा, वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त में खण्ड-खण्ड राज्य हो गया।** पुनः द्वीपद्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे ?

(स० प्र० समु० ११ पृ० १७५)

३. स्वदेशी आन्दोलन और स्वदेश-भक्ति

बहुत सारे लोग यह समझते हैं कि सन् १९०५ में लार्ड कर्जन ने जब बङ्गाल के दो टुकड़े किये तो उस समय बङ्गालियों ने इस विच्छेदन के विरोध में, अनेक विरोधों के साथ-साथ स्वदेशी आन्दोलन को भी चलाया; परन्तु उनको यह पता नहीं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपने ग्रन्थों में और व्याख्यानों में समय-समय पर स्वदेशीय वस्तु-प्रयोग, स्वदेश-भक्ति और भारतीयता

के प्रति आस्था का विचार दिया। स्वामी जी महाराज के प्रचार के अनन्तर आर्य-समाज के सदस्यों में सन् १८७५ से ही स्वदेशी कपड़े पहनने और स्वदेशी वेश-भूषा में रहने का आन्दोलन चल पड़ा था। "अनरेस्ट इन इण्डिया" unrest in India नामक पुस्तक में आर्य-समाजी का चिह्न ही यह बतलाया हैं कि जिसके स्वदेशी और मोटे वस्त्र हों, बन्द गले का कोट हो। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि महर्षि दयानन्द ने बङ्गाल विच्छेद से ३० वर्ष पहले ही स्वदेशी का आन्दोलन बड़े वेग से चलाया था। इसके लिए स्वामी जी महाराज के नीचे के उद्धरण ध्यान से पढ़ें—

१. परन्तु इन लोगों[1] में स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है। ईसाईयों के आचरण बहुत से लिये हैं। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके बदले बहुत निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भर पेट करते हैं। ब्रह्मा आदि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते। प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई। (स० प्र० समु० ११ पृ० २४१)

भला जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया-पिया, अब भी खाते-पीते हैं, अपने पिता पितामह आदि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्रह्म-समाजी और प्रार्थनासमाजी एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करते हैं, इङ्गलिश-भाषा पढ़कर पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना, मनुष्यों का स्थिर और झटिति वृद्धिकारक काम क्यों कर हो सकता ?
(स० प्र० समु० ११ पृ० २४१)

२. देखो अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय (आफिस) और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। उससे समझ लेओ कि अपने बने देश के जूतों का भी जितना मान-प्रतिष्ठा करते हैं, उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। कुछ १०० वर्ष से ऊपर ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए, और आज तक ये

---

१. अर्थात् ब्रह्म-समाजी और प्रार्थना-समाजी लोगों को।

लोग मोटे कपड़े आदि पहरते हैं, जैसा कि स्वदेश में पहरते थे, परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल-चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत से लोगों ने उनकी नकल कर ली है। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं, जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देश वालों को व्यापार आदि में सहायता देते हैं इत्यादि गुणों और अच्छे-अच्छे कामों से उनकी उन्नति है। मुण्डे जूते, कोट, पतलून, होटल में खाने-पीने आदि साधरण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं।

(स० प्र० समु० ११ पृ० २४२)

३. उस समय देश में धन बहुत था और स्वदेश भक्ति भी थी। (स० प्र० समु० ११ पृ० १८१)

४. हम और आप को उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन,-मन,-धन से सब मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। (स० प्र० समु० ११ पृ० २२५)

५. देखो, बड़े शोक की बात है कि जयपुर में अनेक गिरजा घर बन गये और पादरी लोग राम, कृष्ण, आदि भद्र पुरुषों की निरन्तर निन्दा करते हैं और सैकड़ों को बहका कर भ्रष्ट कर रहे हैं, उनको हटाने को पण्डित और राजा आदि राज-पुरुषों ने कुछ भी प्रयत्न न किया। (पत्र और विज्ञापन, पत्र संख्या ४१०)

६. क्या बिना देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में राज्य व व्यापार किये, स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश में ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार व राज्य करें तो बिना दारिद्रय और दुःख के कुछ भी नहीं हो सकता।

(स० प्र० समु० १० पृ० १६५)

७. ऋषि महर्षियों के किये उपकारों को न मानकर, ईसा आदि के पीछे झुक पड़ना अच्छा नहीं। ब्रह्मा से लेकर पीछे आर्यावर्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं, उनकी प्रशंसा न करके युरोपियन

की स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के बिना क्या कहा जाय ? (स० प्र० समु० ११ पृ० २४४)

८. अत्यन्त आनन्द की बात है कि आप लोगों में स्वदेश-हित की बात निश्चित हुई है; परन्तु स्वदेश आदि सब मनुष्यों का निर्विघ्न-हित आर्यसमाज से यथार्थ होगा ।

(पत्र तिथि संवत् १९३१ मिति चैत्र शुक्ल ६, जो उन्होंने बम्बई से श्रीयुत गोपाल राव हरिदेश मुख को लिखा ।)

४. न्याय-राज्य

संसार में सुराज्य (अच्छा राज्य) स्व (अपना) राज्य का वर्णन बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने भाषणों और ग्रन्थों में किया है, परन्तु स्वामी दयानन्द जी महाराज पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने सुराज्य और स्वराज्य के साथ **न्याय-राज्य** पर बहुत बल दिया है । उनका विश्वास था कि जिस राज्य में अन्याय है वह राज्य बहुत काल तक स्थिर नहीं रह सकता । इसलिये वह न्याय-राज्य को ईश्वरीय राज्य के साथ उपमा दिया करते थे। आर्याभिविनय द्वितीय प्रकाश, मन्त्र १ के भाष्य में लिखा है—

१. (हे परमेश्वर) "**जैसा सत्य, न्याययुक्त, अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्याय-राज्य हम लोगों का भी आपकी ओर से स्थिर हो ।**"

२. (हे परमेश्वर) सबके मित्र शत्रु रहित हो, हमको भी आप मित्र गुण युक्त न्यायाधीश कीजिये तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो । हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये । हम पर सहायता करो, जिससे सुनीति युक्त हो के हमारा **स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ।**

(आर्याभिविनय, प्रथम प्रकाश, मन्त्र १८ भाष्य)

३. **अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता ।** (स० प्र० समु० ११)

४. राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाओं का धन न लेवें, किन्तु राज्य पालन के लिये **राजपुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे ।**" (यजुर्वेद अ० ६ मं० २२ भावार्थ)

५. जिस राजा की सभा व राज्य में पूर्ण विद्या-युक्त धार्मिक मनुष्य सभासद् व कर्मचारी होते हैं, जिसकी सभा व राज्य में मिथ्यावादी, व्यभिचारी, अजितेन्द्रिय, कठोर वचनों के बोलने वाले, अन्यायकारी चोर और डाकू आदि नहीं होते और आप (राजा सभापति) भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वही पुरुष चक्रवर्ती राज्य करने के योग्य होता है। इससे विरुद्ध नहीं ।

(यजु० अ० ९ मं० ३५ भावार्थ)

६. जो मनुष्य इस प्रकार के उत्तम पुरुषों की सभा से **न्यायपूर्वक** राज्य करते हैं, उनके लिये परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि हे मनुष्यो ! तुम धर्मात्मा हो के **न्याय से राज्य करो;** क्योंकि जो धर्मात्मा पुरुष हैं मैं उनके क्षात्र धर्म और सब राज्य में प्रकाशित रहता हूं और वे सदा मेरे समीप रहते हैं ।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृष्ठ ३२६)

७. राजाओं की सेना और सभा में जो पुरुष हों वे सब दुष्टों पर तेजधारी, श्रेष्ठों पर शान्त रूप, सुख, दुःख के सहन करने वाले और धन के लिये अत्यन्त पुरुषार्थी हों, क्योंकि दुष्टों पर क्रुद्ध स्वभाव और श्रेष्ठों पर सहनशील होना, यह राज्य का स्वरूप है।

८. सगर राजा ने उसे (अपने पुत्र को) शासन किया और उसे एक गरीब के बालक को पानी में फेंकने के कारण—एक महा भयंकर जंगल के बीच कैद कर रखा। इसी का नाम न्याय है। नहीं तो **आज-कल के राजा लोग और उनके न्याय का क्या पूछना है ?**

(उपदेश-मंजरी, पूना व्याख्यान, संख्या ९)

५. एक राजा का राज्य न हो

इस समय देश में प्रजातन्त्र, (democracy) एक राजा राज्य, तानाशाही (dictator ship) शासनों का प्रचार है। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने आज से ८६ वर्ष पहले ही वेदादि शास्त्रों के आधार से ऐसी शासन-पद्धति का विचार दिया कि जिससे कोई भी स्वतन्त्रता को प्राप्त कर उच्छृंखलता न कर सके।

१. सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि **एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये, किन्तु राजा, जो सभापति तदधीन सभा,**

सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन, और प्रजा राज-सभा के आधीन रहे। (स० प्र० समु० ६ पृष्ठ ८५)

२. जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें, जिस लिये अकेला राजा स्वाधीन व उन्मत्त हो के प्रजा का नाशक होता है। अर्थात् वह राजा प्रजा को खाये जाता है। इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। (स० प्र० समु० ६ पृष्ठ ८५)

३. जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्ट-पुष्टपशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता। श्रीमानों को लूट-खूट, अन्याय से दण्ड दे के अपना प्रयोजन पूरा करेगा। (स० प्र० स० ६ पृ० ८५, ८६)

४. जैसे मांसाहारी मनुष्य पुष्ट पशु को मारके उसका मांस खा जाता है, वैसे ही एक मनुष्य राजा हो के प्रजा का नाश करने हारा होता है, क्योंकि वह सदा अपनी ही उन्नति चाहता रहता है।
(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका भाष्यकरण शंकासमाधान विषय)

५. हे सभापते! विद्यामय! न्यायकारिन्! सभासद् सभाप्रिय, सभा हो। हमारा राजा न्यायकारी हो। ऐसी इच्छा वाले आप हमको कीजिये। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न मानें।
(आर्याभिविनय, द्वितीय प्रकाश, मन्त्र ५२ भाष्य)

६. तीन प्रकार की सभाओं के आधीन सब राज्य-कार्य होना चाहिये

१. जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। महाविद्वानों को विद्या-सभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्म सभाधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राज-सभा के सभासद् और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पति रूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें। सब के हितकारक कामों में सम्मति करें।

सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और धर्म-युक्त कामों में अर्थात् जो-जो निज के काम हैं उन-उन में स्वतन्त्र रहें।

(सत्यार्थप्रकाश, समु० ६ पृ० ८६)

२. सब जगत् का राजा एक परमेश्वर ही है और सब संसार उसकी प्रजा है। इसमें यह यजुर्वेद १८वें अध्याय के २९वें मन्त्र के वचन का प्रमाण है--**वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम** अर्थात् सब मनुष्य लोगों को निश्चय करके जानना चाहिये कि हम लोग परमेश्वर की प्रजा हैं, और वही एक हमारा राजा है।

३. **तीन प्रकार की सभा ही को राजा मानना चाहिये, एक मनुष्य को कभी नहीं**। वे तीनों ये हैं—प्रथम राज्य-प्रबन्ध के लिये एक **आर्य राजसभा** कि जिससे विशेष करके सब राजकार्य ही सिद्ध किये जायें।

दूसरी **आर्य-विद्यासभा** कि जिससे सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार होता जाये।

तीसरी **आर्य-धर्मसभा** कि जिससे धर्म का प्रचार और अधर्म की हानि होती रहे। इन तीन सभाओं से अर्थात् युद्ध में सब शत्रुओं को जीत के नाना प्रकार के सुखों से विश्व को परिपूर्ण करना चाहिये।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, राजप्रजाधर्म विषय)

४. इसलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राज-सभाओं में मूर्खों की कभी भर्ती न करें; किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों की स्थापना करें। (स० प्र० समु० ६ पृ० ८८)

५. हे विद्वान् मनुष्यों! तुम सभ्य पिता के समान प्रजा जनों की पालना करने वाले बहुत अवस्था से युक्त और दुःख को पाकर न कांपने वाले, सामर्थ्यवान्, गम्भीर-आशय, अद्भुत सेना तथा शस्त्र और अस्त्रों की विद्या में कुशल बल से युक्त शत्रु-समूह को सहने वाले और बहुत गुण कर्मों से युक्त जो पुरुष हो उसी को राज्याभिषेचन काम में अभिषेक करो। (ऋग्वेद-भाष्य, ६।७५।९)

७. राज्याधिकारी कैसे हों?

स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न हुए वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और

कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात व आठ उत्तम धार्मिक, चतुर सचिव अर्थात् मन्त्री करें, क्योंकि विशेष सहायकों के बिना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है। जब ऐसा है तो महान् राज्य कर्म एक से कैसे हो सकता है? इसलिए एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है। अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चित बुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे। जितने मनुष्यों से राज्य-कार्य सिद्ध हो सके, उतने आलस्य रहित बलवान्, और बड़े बड़े चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकार अर्थात् नौकर करें। (स० प्र० समु० ६ पृ० ९०)

८. सम्मति (वोट) का अधिकारी

प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा व राज-पुरुष न हों।
(स० प्र० समु० ६ पृ० १०१)

[आज कल भारत में जो प्रजातन्त्र वाद चल रहा है उसमें प्रत्येक वयस्क (अर्थात् २१ वर्ष के) नर नारी की सम्मति ली जाती है। ऊपर से देखने में तो यह विधि बहुत अच्छी प्रतीत होती है; परन्तु भारत जैसे अशिक्षित और निर्धन देश में यह चुनाव विधि बहुत घातिनी है। लाखों अशिक्षित लोग सम्मति के समय भेड़ों की तरह चुनाव स्थान पर ले जाए जाते हैं। उनको कुछ पता नहीं कि सम्मति (वोट) का क्या मूल्य है। वह राज्याधिकारी, नम्बरदार, थानेदार, गांव तथा विरादरी के मुखियों के कहने पर सम्मति (वोट) दे देते हैं। उनको यहां तक भी नहीं पता कि सम्मति किस को और क्यों दे रहे हैं। कई लोग तो चुनाव अधिकारी के आगे हाथ जोड़ कर उनसे पूछते हैं कि ये सम्मति पत्र हम कहां और किस को डालें? ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि सम्मति पत्रों को फाड़कर एक-एक टुकड़ा सब प्रत्याशियों के बक्सों (डब्बों) में डाल देते हैं और बाहर आकर कहते हैं कि हमने सब को सम्मति पत्र दे दिया। चुनावों में ऐसा भी देखने में आया है कि निर्धनों के मुहल्लों में हलवा पूरी और पुलाव खुले आम खिलाये जाते हैं, शराब की बोतलें बांटी जाती हैं और कहीं-कहीं नकद रुपया देकर भी सम्मतियें ली जाती हैं। ऐसे देश में यह कहना कि यह वयस्क चुनाव किया जाता है, यह बात दोष-पूर्ण है। ऋषि दयानन्द ने मनुस्मृति

के आधार से यह लिखा है कि यदि एक अकेला सब वेदों को जानने हारा द्विजों में उत्तम, संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, करोड़ों मिल के जो व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये। जो ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषणादि का व्रत, वेद विद्या या विचार से रहित जन्म-मात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं, उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती। जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें, उसको कभी न मानना चाहिये, क्योंकि जो मूर्खों से कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं, उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। (स० प्र० समु० ६ पृ० ८८)

जिसको सम्मति देने का ज्ञान ही नहीं, उसकी सम्मति से निर्वाचित प्रत्याशी देश का भला नहीं कर सकते। क्योंकि चतुर और स्वार्थी लोग धन, विरादरी, और बाहु-बल से विजयी हो जाते हैं और सच्चे पुरुष, जो देश को ठीक मार्ग प्रदर्शित कर सकते हैं निर्धन होने के नाते और गुण्डा-गरदी न करने के कारण असफल हो जाते हैं। भारत की वर्त्तमान पार्लिया मैंट में ऐसे अनेकों व्यक्ति हैं जिनको राजनीति के अक्षर का भी ज्ञान नहीं और वे हमारी संसद् के प्रतिनिधि बने हुए हैं। एक संसद् सदस्य, जो कि देश की अवस्था को जरा भी नहीं जानता था, उससे मैंने पूछा कि आप इतने वर्षों से पार्लिया मैंट के सदस्य हैं आप ने कभी भी कोई प्रश्न नहीं किया, न ही कोई भाषण दिया। उसने कहा हम तो एक पार्टी के बल के आधार पर चुने गये हैं, हमें बोलने (भाषण) की कोई आवश्यकता ही नहीं। हमें तो जैसा अपने पक्ष का सचेतक (ह्विप) आज्ञा देता है, हम हाथ खड़ा कर देते हैं। विधान सभा का एक विद्वान् जो कि आर्य था, मैंने उससे पूछा कि इस वर्ष विधान सभा के लिए आप क्यों नहीं खड़े हो रहे? उसने कहा कि इस सभा में तो कई बार अपने आत्मा के विरुद्ध भी अपनी पार्टी के समर्थन के लिये हाथ खड़ा करना पड़ता है। मैंने यही उचित समझा है कि अपने आत्मा को गिराने की अपेक्षा ऐसी सभा में खड़े होना ठीक नहीं। ऐसी परिस्थितियों में वयस्क मताधिकार के बल पर चुने गये प्रतिनिधि देश का क्या भला कर सकते हैं?

६. दण्ड-शासन

जिस राज्य में दण्ड सजा या Punishment का ठीक प्रयोग नहीं होता और राज्य के अधिकारी दण्ड देने में स्वार्थ के लिए आनाकानी करते हैं, उस देश की प्रजा सुखी कभी नहीं रह सकती। वहां चोर डाकू, गुण्डे, प्रजा को हर समय त्रसित करते रहते हैं। मनु महाराजने भी यही लिखा है कि, जिस राज्य में चोर डाकू तथा दुष्ट पुरुषों से प्रजा दुःखी रहती है, उस राजा का राज्य स्थिर नहीं रह सकता।

दण्ड का यथोचित व्यवहार न होने से प्रजा में भ्रष्टाचार तथा दुष्टाचार फैल जाते हैं। भारतवर्ष में इस समय भ्रष्टाचार अंग्रेजों के राज्य से भी अधिक फैल गया है। उसका कारण दण्ड का ठीक प्रयोग न करना ही है। भ्रष्टाचारी लोग अधिकारियों को रिश्वत (गुप्त धन) देकर अथवा किसी विशिष्ट पुरुष की सिफारिश के के द्वारा बच जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि दिन प्रति-दिन एक को देखकर दूसरे के मन में भी दुष्टाचार और भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति बढ़ गई है। दण्ड का ठीक प्रयोग न होने का कारण एकपक्ष शासन भी है (Party Government) है। उसका परिणाम यह हुआ हैं कि कांग्रेस की पार्टी में लाखों सदस्य हैं। वे लोग मुहल्ले, नगर-नगर, तथा ग्राम-ग्राम में अपनी पार्टी के राज्य होने के नाते भ्रष्टाचारियों पर दबाव नहीं डालते। इसका कारण चुनाव है। जिस पुरुष के पास कुछ सम्मतियां (वोट) अधिक होती हैं वह अपने मुहल्ले, गांव तथा नगर में भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी करने वालों को बचाने के लिए अधिकारियों के पास जाते हैं और साथ ही उस क्षेत्र से निर्वाचित विधान सभा अथवा संसद् सदस्य को साथ ले जाकर अपना काम करवा लेते हैं और वे निर्वाचित सदस्य भी यह नहीं देखते कि दुष्टों को दण्ड मिलना चाहिये और प्रजा की सुरक्षा होनी चाहिये, उनकी दृष्टि में निर्वाचन का स्वार्थ होता है, इसलिए डर के मारे उस क्षेत्र के लोगों से भविष्य में सम्मति लेने के कारण न्याय-अन्याय की अवहेलना करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। उनकी दृष्टि में स्वदेश और देशवासियों की अपेक्षा अपना निर्वाचन स्वार्थ मुख्य होता है।

कड़ा दण्ड

आज कल संसार में दण्ड देने के लिये नया विचार चल रहा है। कई विद्वानों का मत है कि अपराधी को दण्ड बिल्कुल थोड़ा देना चाहिए और उसकी मानसिक अवस्था को ठीक करने के लिये और ही साधन प्रयोग में लाने चाहियें। कई देशों में तो यहां तक भी हो गया है कि अपराधी कुछ समय के पीछे अपने घर में जाकर कुछ काल तक अपने परिवार में रहकर फिर कारावास में भेज दिया जाता है। भारतवर्ष में भी यह नई विचार धारा दी जा रही है कि कड़ा दण्ड, फांसी आदि बंद कर देनी चाहिये। महर्षि दयानन्द कड़ा दण्ड देने के पक्ष में थे। उनका विचार है कि कड़े दण्ड से ही प्रजा में शान्ति रह सकती है, अन्यथा नहीं। रशिया ने भी कड़े दण्ड को अपनाने का निश्चय कर लिया है। अभी रूस के प्रसिद्ध पत्र प्रवदा का समाचार छपा है कि सरकार ने मेनिकोलाई कोतल्यार और उसके ७४ वर्ष के बूढ़े हिस्सेदार डा० बेगेलमन को मौत की सजायें दे दी हैं। कारण यह कि मिस्टर कौतल्यार ने अपने मकान के तहखाने में प्रसाधन (Beauty) सामग्री बनाने की एक फैक्टरी खोल रखी थी, जिसमें मुख्य काम रिगा स्थित प्रसिद्ध सरकारी कम्पनी की लिपस्टिक की हजारों डिब्बयां चुरा कर उनमें अपनी फैक्ट्री की लिपस्टिक भरी थी। रूसी सरकार की दृष्टि में यह अपराध साधारण नहीं था। वहां के न्यायालय ने कोतल्यार और बेगेलमन इन दोनों को इस अपराध के कारण प्राण दण्ड दिया गया। (धर्म-युग ८ अप्रेल १९६२)

मास्को के समाचार पत्रों में छपा है कि सट्टे में १५ लाख रुपये कामने वाले व्यक्तियों को सरकार ने फांसी दे दी है।

५ जून १९६२

इस प्रकार के उग्र दण्ड से यह लाभ हुआ कि वहां की प्रजा भयभीत हो गई और आगे से इस प्रकार कुकर्म करने से रुक गई। भारतवर्ष में हम लोग सरकारी रिपोर्ट पढ़ते हैं कि यहां पर खाने-पीने की चीजों तथा औषधियों और अनेक पदार्थों में मिलावट हो रही है। बनावटी वस्तुयें बनाकर बेच रहे हैं, परन्तु सरकार की दुर्बल दण्डनीति के कारण यह अपराध दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है

और देश का अधःपतन हो रहा हैं । इन सब विचारों पर आप आगे महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचार धारा पढ़ें, जो उन्होंने मनु आदि मुनियों के आधार पर अपने अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में प्रकट की है।

१. जो दण्ड है वही पुरुष, वही राजा, वही न्याय का प्रचार कर्त्ता और सबका शासन कर्त्ता है। वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन हैं ॥१॥ वही प्रजा का शासन कर्त्ता, सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है । इसलिए बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं ॥२॥ जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय, तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है, और जो बिना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है ॥३॥ बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे ॥४॥ जहां कृष्ण वर्ण, रक्त नेत्र, भयंकर, पुरुष के पापों का नाश करने हारा दण्ड विचरता है, वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती हैं, परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपात रहित विद्वान् हो तो ॥५॥ जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करने हारा, क्षुद्र, नीच-बुद्धि न्यायाधीश होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है। ॥६॥ (स० प्र० समु० ६ पृ० ८७)

२. जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू, चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे।

(स० प्र० समु० ६ पृ० ९४)

३. जो राजपुरुष अन्याय से वादी प्रतिवादी से गुप्तधन (रिश्वत) ले के पक्षपात से अन्याय करे उसका सर्वस्व हरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रखे कि जहां से पुनः लौट कर न आ सके क्योंकि यदि उसको दण्ड न दिया जाये तो उसको देख के अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहें।

(स० प्र० समु० ६ पृ० ९५)

४. जिस भृत्य सहित देखते हुये राजा के राज्य में से डाकू लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते रहते हैं वह जानो भृत्य अमात्य सहित मृतक है, जीता नहीं और महा-दुःख का पाने वाला है। (स० प्र० समु० ६ पृ० ९६)

५. जिस प्रकार जिस-जिस अङ्ग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है उस-उस अङ्ग को सब मनुष्यों की शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे ॥१॥ चाहे पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र, और पुरोहित क्यों न हो। जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता, वह राजा का अदण्डय नहीं होता अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे, किन्तु यथोचित दण्ड देवे ॥२॥ क्योंकि यदि प्रजा-पुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजा-पुरुषों का नाश कर देवे ॥३॥ इसलिये राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजा-पुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिये ॥४॥

(स०प्र० समु० ६ पृष्ठ १०५)

प्रश्न—जो राजा व राणी अथवा न्यायाधीश व उसकी स्त्री व्यभिचार आदि कुकर्म करे, तो उसको कौन दण्ड देवे ?

उत्तर—सभा अर्थात् उनको तो प्रजा-पुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये।

प्रश्न—राजा आदि उनसे दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे ?

उत्तर—राजा भी एक पुण्यात्मा, भाग्यशाली मनुष्य है। जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे, दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे, और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है ? जो ऐसी अवस्था न हो तो राजा, प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबाके सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें। (स० प्र० समु० ६ पृष्ठ १०६)

प्रश्न—यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं; क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनाने हारा या जिलाने वाला नहीं है। इसलिये ऐसा दण्ड नहीं देना चाहिये।

उत्तर—जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे, और बुरे काम को छोड़कर धर्म-मार्ग में स्थित रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सबके भाग में न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्टकर्म बहुत बढ़कर होने लगें। वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह करोड़ों गुना अधिक होने से, करोड़ों गुना कठिन होता है, क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा-थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा। (स० प्र० समु० ६ पृ० १०६)

८. जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता है और जिसको दण्ड न देना चाहिए उसको दण्ड देता है, वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है। इसलिए जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे।

(स० प्र० समु० ६ पृ० १०४)

१०. स्वराज्य के लिए किन-किन गुणों की आवश्यकता है?

स्वराज्य की प्राप्ति और प्राप्त करके उसको स्थिर रखने के लिए भी देशवासियों में विशेष गुण होने चाहियें। सबसे प्रथम उनमें मातृ-भूमि, मातृ-संस्कृति के लिए अटूट श्रद्धा होनी चाहिये और देश की स्वतन्त्रता को माननीयतम व्यक्ति से भी ऊंचा समझना चाहिये। भारतवर्ष में राष्ट्रिय-चरित्र को महत्त्व नहीं दिया जाता। यहां पर व्यक्तिगत चरित्र को ही सच्चरित्र समझा जाता है। वास्तव में यह बात ठीक नहीं, क्योंकि व्यक्तिगत-चरित्र का सम्बन्ध अपने शरीर और आत्मा से है और राष्ट्र-चरित्र का संबन्ध सारे राष्ट्र से है। जब तक इस बात को न समझा जायेगा, देश पूरी तरह से खड़ा नहीं हो सकता। इसीलिए स्वामी दयानन्द जी महाराज ने आर्य-समाज के दस नियमों में अन्तिम दो नियम इस आशय को लक्ष्य में रखकर बनाये थे—

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

"सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।"

इन दो नियमों से ही आचार्य ने राष्ट्र-चरित्र की आधार शिला रक्खी है। श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में इसी को लोक-संग्रह कहा है, परन्तु आजकल भारतवर्ष में राष्ट्र-चरित्र की भावना न्यून होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही उन्नति में लगा हुआ है, उसको देश की उन्नति का ध्यान बहुत कम है।

इस समय भी भारतवर्ष में सैकड़ों लोग तस्कर व्यापार करते हैं, जिससे उस व्यक्ति को तो धन प्राप्त होता है, परन्तु देश को हानि पहुंचती है। महमूद के आक्रमण के समय, उसके मार्ग में आने वाले नगर और ग्राम के लोग उसके सैनिकों से बहुत-सा रुपया लेकर उनको खाने-पीने की सामग्री देते थे, जिसके कारण वह आक्रमण करता-करता आगे बढ़ता था—ऐसा इतिहासकारों ने लिखा है। इस समय भी सीमा प्रान्त तथा बन्दरगाहों पर प्रतिदिन यही दुष्टाचार होता है। असम प्रान्त में इस समय लाखों पाकिस्तानी मुसलमान पूर्वी पाकिस्तान से भारतवर्ष में आकर बस गये हैं और नित्य प्रति भारत में प्रवेश अब भी करते हैं। हमारे एक मित्र ने, जो यह देखने के लिए स्वयं वहां गया था, आकर बताया कि सीमा पर जो सिपाही खड़े होते हैं, उनमें से कुछ सिपाही पाकिस्तानी मुसलमानों से गुप्त धन (रिश्वत) लेकर उनका भारत में प्रवेश करा देते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि असम में फिर दो टुकड़े होंगे और हमारा देश शत्रुओं के पास चला जायेगा। वे गुप्त धन लेने वाले इसको पाप नहीं समझते। पिछले दिनों शादीलाल नामक एक व्यक्ति पकड़ा गया, जो कि भारत की गुप्त फाइलें पाकिस्तान के अफसरों को दिखाकर भारत का भेद बता देता था। इस प्रकार के सैकड़ों व्यक्ति देश में हैं, जो स्वार्थ के लिए राष्ट्र-चरित्र को गौण समझते हैं। हम प्रतिदिन देखते हैं कि मन्दिरों, गुरुद्वारों में जाकर पूजा करते हैं और इसी को धर्म समझते हैं, परन्तु कार्यालयों में जाकर पूरे घण्टे काम न करने, पदार्थों में मिलावट करने तथा कम तोलने को दुश्चरित्र नहीं समझते। आचार्य दयानन्द ने प्रजा, राजा एवं राज-

पुरुषों में जिन गुणों की आवश्यकता होनी चाहिये उनका भी वर्णन अपने अमूल्य ग्रन्थों में किया है। जो इस प्रकार है--

१. अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना चाहिये। (यजुर्वेद-भाष्य १।६)

२. जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते, तब तक राज्य सुख को प्राप्त नहीं कर सकते। (यजुर्वेद-भाष्य १।२८)

३. जो लोग.....अच्छी शिक्षा देकर शूरधीर पुरुषों का सत्कार करके सेना में नहीं रखते हैं, उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है। (यजुर्वेद-भाष्य ५।३७)

४. अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बल आदि उत्तम गुण युक्त हमें करके अपनी कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।
(आर्याभिविनय, द्वितीय प्रकाश, मन्त्र ३१ भाष्य)

५. जो राजा धन आदि के लोभ से धनियों के ऊपर प्रसन्न और दरिद्रों के प्रति अप्रसन्न कभी नहीं होता और जो दुष्टों को उत्तम प्रकार दण्ड देकर श्रेष्ठों की निरन्तर रक्षा करता है, उसका राज्य कभी खेद को प्राप्त नहीं होता। (ऋग्वेद-भाष्य ।४।२५।७)

६. जिस राजा के वश में भूमि, जल, अग्नि, और पवन[1] हैं, उस राजा को किसी शत्रु आदि से भय नहीं होता और वह राजा यशस्वी और प्रसिद्ध इस जगत् में होता है। (ऋग्वेद-भाष्य ५।३७।४)

७. जो राजपुरुष राजनीति के साथ वैश्यों (व्यापारियों) की उन्नति करे, वही लक्ष्मी को प्राप्त करे होवें। (यजुः-भाष्य १०।१२)

८. जिस देश में उत्तम विद्वान् ब्राह्मण विद्यासभा, और राजसभा में शूरवीर क्षत्रिय लोग, ये सब मिल के राजकामों को

---

१. भूमि शासन, शीघ्रगामी यानों एवं शस्त्रास्त्रों द्वारा, जल=समुद्र सैनिक युद्ध-पोतों द्वारा, वायु=आकाश शीघ्रगामी यौद्धिक विमानों द्वारा। जल-वायु, कला-कौशल यन्त्रों, वाहनों एवं शस्त्रास्त्रों में प्रयुक्त होकर।

सिद्ध करते हैं, वही धर्म और शुभ क्रियाओं से संयुक्त हो के सुख को प्राप्त होता है। जिस देश में परमेश्वर की आज्ञा-पालन और अग्निहोत्र आदि सत्-क्रियाओं में वर्त्तमान विद्वान् होते हैं, वही देश सब उपद्रवों से रहित हो के अखण्ड राज्य को नित्य भोगता है।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

९. हे कृपानिधे ! हम को विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, **स्वदेश-सुख-सम्पादन** आदि गुणों में सब नर-देहधारियों से उत्तम करो। (आर्याभिविनय, प्रथम प्रकाश, १६)

११. आर्य-भाषा तथा संस्कृत की विशेषता

इस समय भारत के विधान में आर्य-भाषा हिन्दी को राष्ट्र-भाषा माना गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जो बहुत दीर्घदर्शी थे, उन्होंने ९५ वर्ष पहले ही इस बात को भांप लिया था कि देश की एक लिपि और एक भाषा होनी चाहिये, अतः जन्म से गुजराती होते हुए भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को आर्य-भाषा में लिखा, लिपि के लिये उन्होंने देवनागरी को ही अपनाया और राष्ट्र भाषा के लिये आर्य भाषा (हिन्दी) को स्वीकार किया। आर्य-भाषा के साथ वे संस्कृत की उन्नति भी चाहते थे। उनका निश्चय था कि चिर-काल से ही भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्त और भाषा होने पर भी संस्कृत एक ऐसी भाषा है जो अभी तक भी सबको एक सूत्र में बांधे हुये हैं। वर्तमान समय के बड़े-बड़े नेता भी अब यह अनुभव करते हैं कि संस्कृत की उन्नति होनी चाहिये, जिससे देश की सांस्कृतिक एकता बढ़े। आर्य-भाषा (हिन्दी) को राष्ट्र-भाषा मानकर भी कांग्रेस सरकार इसकी उन्नति पूरे प्रयत्न से नहीं कर रही। प्रत्युत इसके स्थान पर अंग्रेजी को अधिक प्रोत्साहित किया जा रहा है। कितनी लज्जा की बात है कि भारत के स्वतन्त्र होने पर भी, भारतीयों की अंग्रेजी के प्रति अधिक निष्ठा दासता की प्रवृत्ति को प्रकट करती है। अंग्रेजी, जर्मन, रशियन आदि भाषाओं के पढ़ने व सीखने में किसी का विरोधी नहीं, परन्तु जन साधारण में आर्य-भाषा के स्थान पर अंग्रेजी का ठूंसना भारत की उन्नति में बाधा डालना है। भारत के राजदूत के रूप में जब विजयलक्ष्मी पंडित ने अंग्रेजी में

अपने परिचय पत्र रूस में उपस्थित किये तो रशिया के अधिकारी ने कहा कि अंग्रेजी के परिचय पत्र हम स्वीकार नहीं करेंगे। परिचय-पत्र अपनी राष्ट्र-भाषा में अथवा रूस की भाषा में हमें दो तो हम स्वीकार करेंगे। इस अपमान से अंग्रेजी के पक्षपाती अधिकारियों को ज्ञान हुआ कि अपने परिचय पत्र हिन्दी में भेजने चाहिये। स्वामी दयानन्द जी महाराज के इस विषय में जो विचार है, उनको आगे ध्यान से पढ़ें।

१. जब पांच-पांच वर्ष के लड़का लड़की हों, तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावे। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। (स० प्र० समु० २ पृ० १५)

२. इस पाठशाला में मुख्य संस्कृत जो मातृभाषा है, उसकों ही वृद्धि देना चाहिये। (पत्र संख्या ३५६)

३. **जोधपुर नरेश को पत्र**—आप महाराजकुमार की शिक्षा के लिये किसी मुसलमान व ईसाई को मत रखिये। नहीं तो महाराजकुमार इनके दोष सीख लेंगे और आपके सनातन राजनीति को न सीखेंगे। न वेदोक्तधर्म की ओर उनकी निष्ठा होगी, क्योंकि बाल्यावस्था में जैसा उपदेश होता है वही दृढ़ हो जाता है। उसका छूटना दुर्घट है। महाराजकुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइयेगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रख के **प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या, जिसमें सनातन आर्ष ग्रन्थ हैं, जिनके पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महा लाभ प्राप्त हो।** इन दोनों को पढ़े। पश्चात् यदि समय हो तो अंग्रेजी भी। (पत्र संख्या ५७६)

४. इससे विदित है कि तुम्हारी पाठशाला में अलिफ-बे और कैट-बैट की भर मार है। जो कि आर्य-समाजों को विशेष कर्त्तव्य नहीं हैं। (पत्र संख्या ४६६)

५. वेदभाष्य के लिफाफे पर रजिस्टर के अनुसार ग्राहकों का पता किसी देवनागरी जानने वाले से नागरी में लिखा कर टपास किया करें। (पत्र संख्या १०६)

६. गो-रक्षार्थ सही आर्य-भाषा को राज्यकार्य में प्रवृत होने के अर्थ शीघ्र प्रयास कीजिए। (पत्र संख्या ४३४)

७. इस पाठशाला में अधिक करके संस्कृत की उन्नति पर ध्यान रहना चाहिये । (पत्र संख्या ३५४)

८. जहां तक बने पाठशाला के उद्देश्य पर कि संस्कृत की उन्नति हो सो इस पर अच्छे प्रकार ध्यान रहे । (पत्र संख्या ३५८)

९. आप लोगों की पाठशाला में आर्य-भाषा और संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा उर्दू, फारसी अधिक पढ़ाई जाती है·····यह हजार मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है·····बहुत काल से आर्यावर्त्त में संस्कृत का अभाव हो रहा है—वरन संस्कृत रूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृ-भाषा हो चली है·····इस (अंग्रेजी) की वृद्धि में हम तुमको आवश्यकता नहीं दीखती । (पत्र सं० ४०५)

उन दिनों आर्य्य-भाषा के प्रचारार्थ एक कमीशन नियत हुआ था ।ऋषिवर आर्य्य-भाषा को राजकार्य में प्रवृत्त कराना चाहते थे, अतः वह आर्य्य भाषा और गोरक्षा के लिये एक मेमोरियल भिजवाने का प्रबन्ध कर रहे थे । इसके सम्बन्ध में उन्होंने एक पत्र ता० १४ अगस्त सन् १८८२ ई० लाला कालिचरण, रामशरण को लिखा, जिसमें ऋषिवर लिखते हैं—

१०. "गोरक्षार्थ कितनी सही हो चुकी, इसका उत्तर लिखना इस समय (आर्य-भाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं, सो शीघ्र भेजना और आप लोग भी जहां तक हो सके गोरक्षार्थ सही और आर्य-भाषा के राजकार्य में दूसरा पत्र प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये ।"

११· "दूसरा अति शोक करने की यह बात है कि आज-कल सर्वत्र अपनी आर्य-भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ (भाषा के प्रचारार्थ जो कमीशन नियत हुआ है) उसमें पंजाब हाथा आदि से मेमोरियल भेजे गये हैं, परन्तु मध्यप्रान्त, फर्रूखाबाद, कानपुर, बनारस आदि स्थानों से नहीं भेजे गये, ऐसा ज्ञात हुआ है और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र आया था । उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गये और हमको लिखा है कि आप इस विषय में प्रयत्न कीजिये । अब

कहिये हम अकेले सर्वत्र कैसे घूम सकते हैं ? जो यह एक काम हो तो कुछ चिन्ता नहीं। इस लिये आपको अति उचित है कि मध्य देश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों से और जहां-जहां परिचय हो, सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं और अवसर चूके यह अवसर [फिर] आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जावेगी।

१२. देश की अधोगति के कारण

भारतवर्ष महाभारत काल से लेकर अभी तक भी नीचे ही जा रहा है। परन्तु दूसरे देश कई बार गिरे और फिर उठकर अपनी उन्नत स्थिति में आ गये। जर्मनी का दृष्टान्त हमारे सामने है। सन् १९१४ तथा १९३९ सन् की दो लड़ाइयों में जर्मन देश हारा, दूसरी लड़ाई में तो बुरी तरह पिटा, परन्तु अब थोड़े वर्षों में ही जर्मन लोग बल, अर्थ, उद्योग और देश की उन्नति में पूर्ववत् हो गये हैं। जापान युद्ध में हारा, अब वह भी बलवान् हो गया है। रशिया में १९१७ में जार के परिवार की हत्या करके बोल्शेविज्म के आधार से देश पर कम्युनिष्टों के कब्जा किया और ४५ वर्षों में इतना बलवान् हो गया हैं कि सारा संसार उससे कांप रहा है। कुछ ही सौ वर्ष पहले, अमेरिका की भूमि पर युरोपियन लोगों ने प्रवेश किया और वे अब इतने समृद्ध हो गये हैं कि धन तथा शासन शक्ति में सबसे प्रथम गिने जाते हैं। भारतवर्ष ५ सहस्र वर्षों में कई बार उठा और कई बार गिरा, परन्तु एक सहस्र वर्ष से ऐसा गिरा हैं कि अभी तक भी उठने नहीं पाया। यद्यपि इस एक सहस्र वर्ष में बड़े-बड़े योद्धा छत्रपति शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु गोविंदसिंह वीर वैरागी, आदि महापुरुष हुए, जिन्होंने मुगल साम्राज्य की जड़ को खोखला किया, परन्तु मरहठों, राजपूतों और सिखों ने थोड़े ही वर्ष राज्य किया कि अंग्रेजों ने फिर से इस देश को दास बना लिया। प्रतीत होता है कि हमारी विचार-धारा में ही कोई मौलिक भूल है। जिससे हम स्वतन्त्र होकर भी कुछ समय पीछे फिर परतन्त्र हो जाते हैं।

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने देश की अधोगति के कुछ कारण इस प्रकार बतलाये हैं—

१. भिन्न-भिन्न भाषा पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग-अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर हैं। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।
(स० प्र० समु० पृ० १४१)

२. अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद से, परस्पर के विरोध से अन्य देशों में राज्य करने की कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है।

३. क्या बिना देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में राज्य व व्यापार किए स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है। जब स्वदेश में ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार व राज्य करें तो बिना दारिद्रय और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। (स० प्र० समु० १० पृ० १६५)

४. इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते विरोध करते-कराते सब स्वतन्त्रता, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते है कि कुछ पदार्थ मिले कि पका कर खायें। परन्तु वैसा न होने पर जानों आर्यावर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। (स० प्र० समु० १० पृ० १६५)

५. उसी मूर्ति के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय हो के राज्य, स्वतन्त्रता और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भटियारे के टट्टू और कुम्हार के गधे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दुःख पाते हैं। (स० प्र० समु० ११)

६. बुद्ध और जैन मतों के फैलने से क्षात्र धर्म को बहुत हानि पहुंची है। (उ० म०, १३ वां व्याख्यान, पृ० १९२)

७. जो राजा प्रजा पालन के बिना कर लेता है जिस राजा की प्रजा को. दुष्ट देते हैं और जो राजा आप नीच कर्म करने वाला

बाज पक्षी के सदृश, हिंसक पशुओं के सदृश, मूर्ख और जिस राज्य की सेना चोर के सदृश वर्तमान है उसका शीघ्र नाश होता है।

८. परमात्मा की इस सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।

(स० प्र० समु० ११)

१३. भ्रष्टाचार

गुप्त धन (रिश्वत) तथा झूठ कपट से धन को इकट्ठा करने को स्वामी जी ने बहुत निन्दनीय माना है। जिस प्रकार मदिरा-पान और अभक्ष्य पदार्थों का सेवन तथा जुआ आदि निन्दनीय हैं उसी प्रकार झूठ कपट से उत्पन्न किया हुआ धन भी अग्राह्य है। वे लिखते हैं—

१. जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात और छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना, वह अभक्ष्य है।

(स० प्र० समु० १० पृ० १६८)

२. राजाओं का यह उचित कर्म है कि जो मादक द्रव्यों का सेवन करे, उनको अत्यन्त दण्ड देवे। (ऋग्भाष्य, भावार्थ ६-२०-६)

१४. प्राचीन भारत

आर्य्यावर्त्त देश "स्वर्ण-भूमि" कहलाता था—

"यह आर्य्यावर्त्त ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। इसलिये इस भूमि का नाम "स्वर्ण-भूमि" है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है.....जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि जो पारस मणि पत्थर सुना जाता है, वह बातें झूठी हैं, परन्तु आर्य्यावर्त्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिससे लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश, स० ११ पृ० १७२)

"जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उनसे युनानी, उनसे रूम, उनसे युरोप देश में उनसे "अमेरिका" आदि देशों में फैली है।"

(सत्यार्थप्रकाश, स० ११ पृ० १७८)

सप्तम परिच्छेद

आर्यसमाज और राजनीति

स्वामी दयानन्द सरस्वती की राष्ट्रिय-विचारधारा का निदर्शन गत परिच्छेद में कराया जा चुका है। ऐसे उग्र राष्ट्रिय-विचारधारा वाले स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्यसमाज का राष्ट्रोत्थान के निमित्त राजनीति से सम्बन्ध रखना अनिवार्य था। अतएव प्रारम्भिक आर्य-समाजियों में अंग्रेजी राज्य के प्रति विद्रोह की भावना निहित थी और उसी के अनुरूप आर्य व्यक्ति सशस्त्र क्रान्ति, स्वदेशी आन्दोलन तथा महात्मा गांधी द्वारा अपनाये गये सत्याग्रह आन्दोलन आदि में अपनी शक्त्यनुसार भाग लेते रहे। इस कारण अंग्रेज शासकों की दृष्टि में आर्य-समाजी विद्रोही माने गये और उन पर राजद्रोह के अभियोग चलाये गये। उन्हें फांसी दी गई, कठोरतम कारावासों में सड़ाया गया। आर्यसमाज के प्रति अंग्रेजों की क्या भावना थी, यह उनके शब्दों में पढ़िये—

Indian Unrest से

"टाईम्ज लन्दन" के सम्पादक "श्री वैलन्टाईन शिरोल" ने अपनी पुस्तक Indian unrest में जो कि १९१० में प्रकाशित हुई के अध्याय ८ में "पंजाब और आर्य-समाज" का वर्णन करते हुये १९०७ में अंग्रेज सरकार द्वारा पंजाब में "जिमींदारा कानून" लागू करने पर जो आन्दोलन हुआ था—उसके कई कारण बताये, जिन में हिन्दुओं की जात-पांत कट्टरता तथा मुसलमान जमींदारों और हिन्दु साहुकारों के परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या तो की ही, लेकिन उस आन्दोलन का सबसे प्रबल कारण उन्होंने निम्न शब्दों में वर्णन किया—[1]

---

१. मूल पुस्तक अंग्रेजी-भाषा में है। हम उसका हिन्दी-रूपान्तर दे रहे हैं। —ग्रन्थकर्ता

(क) "पश्चिम के विरुद्ध सबसे पहले व प्रबल प्रतिक्रियावादी धर्मोपदेशक को पंजाब के हिन्दुओं में बहुत बड़ी संख्या में जोशीले अनुयायी मिले थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती (आर्य-समाज के प्रवर्त्तक) काठियावाड़ के एक ब्राह्मण थे। लेकिन पंजाब में नहीं, बल्कि बम्बई में, जहां उनका प्रभाव न बढ़ सका, उन्होंने आर्य-समाज स्थापित की थी। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में ही उन्होंने पंजाब में अपनी गति-विधियां शुरु की थीं। उनके सिद्धान्त जिनका वह प्रचार करते थे, उनके ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" एवं "वेद-भाष्य-भूमिका अर्थात् वेदों की व्याख्या" में वर्णित थे और वह अनुयाईयों में बाईबल का स्थान रखते थे।"

(ख) "उदाहरणत: वेदों में पशु-हत्या और मांस-भक्षण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, लेकिन हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध अन्ध-विश्वास का आदर करते हुये उन्होंने गोहत्या को भारी पाप कहने में भी संकोच नहीं किया। और वास्तव में यही उनके सिद्धान्तों की कुंजी है। गौ कि पवित्रता के विचार से ही ईसाईयों—मुसलमानों से हिन्दुओं का भारी विरोध है और दयानन्द के उपदेशों का उद्देश्य हिन्दु-धर्म के सुधार का इतना नहीं था, जितना **विदेशियों के प्रभाव को खत्म करना**। उनके विचार में इस से देश की अखण्डता को बहुत खतरा है। अत: उनके ग्रन्थों में जहां कहीं भी ईसाईयों और मुसलमानों का वर्णन है, उनकी भाषा बड़ी कठोर एवं आक्रमण-कारी है। वह कहते हैं कि यह मदिरापान करने वाले और मांस खाने वाले पशुओं के हत्यारे विदेशी ही हैं, जिनके कारण आर्यों पर विपत्तियां आई हैं। फारसी मूल होने से वह "हिन्दु" शब्द का भी प्रयोग नहीं करते। वह कहते हैं कि जब विदेशी इस देश में नहीं आये थे, तब आर्य्यावर्त के स्वर्णिम दिन थे और यहां के लोग रोग-रहित, सुखी व सन्तुष्ट थे। सत्य तो यह है कि 'आर्यों के लिये आर्यावर्त' का उद्घोषन, दयानन्द की शिक्षा "वेदों की ओर वापस चलो" से भी सर्वोपरि था और उनके एक उत्साही अनुयायी ला० लाजपतराय ने विशेष रूप से इस का उल्लेख किया है कि "स्वामी दयानन्द की सारी स्कीम स्वदेशी और स्वजाति की सुदृढ़ नींव है।"

(ग) "जहां देश के अन्य भागों में समाज सुधार पश्चिमी प्रभुत्व के कारण समझा जा रहा था, और उक्त प्रभुत्व के बढ़ते विरोध

से यह विचार कुछ शिथिल हो रहे थे, वहां पंजाब "आर्यों के लिये आर्य" के उद्घोष और आर्य-समाज की राष्ट्रिय गति-विधियों या कम से कम कुछ एक सुप्रसिद्ध सदस्यों, जो अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध पिछले कुछ वर्षों से चल रहे आन्दोलन में प्रमुख भाग ले रहे थे, उन्होंने हिन्दु रूढ़िवाद से सहिष्णुता और सद्भावना प्राप्त कर ली, जो उनकी सामाजिक गति-विधियां निश्चित रूप से न ले सकतीं। आर्य-समाज के सामाजिक कार्यों पर पश्चिमी प्रभाव की छाप होने पर भी वह अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आन्दोलन से इतना सम्बन्धित हो गया कि भारतीय अशान्ति की समस्या में बहुत सी असंगतियों में एक यह थी। बहुत से आर्य निस्संदेह उत्साह-पूर्वक इस बात का खण्डन करते हैं कि समाज पर इसका कोई प्रभाव नहीं है और न यह राजनीति से सम्बन्धित है। लाहौर शाखा के प्रधान श्री रोशन-लाल ने मुझे विश्वास दिलाया कि समाज केवल धार्मिक व सामाजिक सुधार तक ही सीमित है। मैं इस आश्वासन पर आपत्ति नहीं करता, जहां तक कि केवल रोशनलाल के व्यक्तित्व का सम्बन्ध है और यह भी ठीक हो सकता है कि समाज ने सामूहिक रूप में राजनीतिक कार्य-क्रम को न अपनाया हो व कई एक सदस्य व्यक्ति-गत रूप में राजनीति से पृथक् रहते हों, लेकिन इसके प्रमाण सर्वोपरि प्रकट हैं कि कई दूसरे और बराबर के प्रभावशाली सदस्यों ने पिछले वर्षों में पंजाब और पड़ोसी उत्तरप्रदेश, दोनों प्रान्तों में राजनीतिक विद्रोह में प्रमुख भाग लिया है। रावलपिण्डी के १९०६ के उपद्रवों में मुख्य नेता आर्य थे और उपद्रवों से पूर्व लगभग दो वर्षों तक जो तीव्र प्रचार होता रहा, उसमें लाजपतराय व अजीतसिंह, दोनों प्रसिद्ध आर्यों से बढ़ कर किसी का नाम नहीं आया। उनको देश निकाला देने के तत्काल बाद ही कानून और शान्ति का सामान्य हो जाना, इस बात को प्रत्यक्ष सिद्ध करता है कि उन पर अराजकता पैदा करने में सहयोग देने का अभियोग ठीक ही था। अर्जीतसिंह स्वयं अभी तक न्याय से भागा हुआ है और उसके विरुद्ध लाहौर में शरद् ऋतु से एक पक्षीय कार्यवाही इस अभियोग में चल रही है कि उसने बम्ब बनाने वाली, हत्या करने वाली और सरकारी भवनों को भस्मसात् करने वाली राज-द्रोही पुस्तकों का अनुवाद किया और छपवाया। इसी संबध में ला० लाजपतराय के पत्र भी न्यायालय में प्रस्तुत किये गये जो कि

उपद्रवों के दिनों में भारतीय साम्यवादी दल के प्रमुख श्यामजी कृष्ण वर्मा को ऐसी पुस्तकें भेजने के लिये लिखे गये थे, जिन से लाहौर के छात्रों को राजनीति के सही विचार मिल सकें और राजनीतिक प्रचारकों के लिये सहायता की मांगी गई थी। इनमें से एक पत्र में लाजपतराय ने लिखा था कि जनता बड़ी रोष पूर्ण मुद्रा में है और देहाती लोग भी आन्दोलन में कूद पड़े हैं। यह बात उसमें विशेष रूप से वर्णित थी कि उसे भय है कि कहीं यह विस्फोट समय से पूर्व न हो जाये। लाजपतराय का पत्र लेखक एक और प्रसिद्ध आर्य भाई परमानन्द था, जिसके पास जब कि वह डी. ए. वी. कालेज में अध्यापक था, बम्ब बनाने के विभिन्न फार्मूले और मानकटोला बाग कलकत्ता से पकड़ी जाने वाली नियमावली थी।

पिछले दिसम्बर में पंजाब की एक सिक्ख देशी रियासत पटियाला में राजद्रोहात्मक कार्यवाइयों के लिए चलाये गये एक मुकदमें में बहुत अधिक संख्या (७६) आर्यों की थी और उनमें से अधिकांश सरकारी अफसर या गण्य-मान्य व्यक्ति थे। अभियोग बड़े गम्भीर थे, जिससे आर्य-समाज पर सामूहिक रूप में भी प्रभाव पड़ सकता था। इसीलिये उसने एक नामी वकील अभियुक्तों की सहायता के लिये नियुक्त किया। सरकारी वकील ने अपने प्रारम्भिक अभियोग पत्र में बताया कि अभियुक्तों में से कुछ एक शिक्षक अपने छात्रों को विद्रोहात्मक शिक्षा देते थे और पुराने शिष्यों से तत्सम्बन्धी ही पत्र व्यवहार करते थे। दूसरों पर 'युगान्तर' व 'स्वराज्य' सदृश समाचार पत्र बांटने का अभियोग था और कुछ पर गुप्त बैठकें करके भडकीले भाषण करने तथा शेष लोगों पर मुजफ्फरनगर के हत्यारे खुदीरांम बोस सहित प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों के चित्र और फोटो बांटने के अभियोग थे। न केवल इनमें से अधिकांश आर्य थे बल्कि प्रसिद्ध आर्य थे, जिन्होंने समाज की स्थानीय शाखायें स्थापित की थीं या पटियाला रियासत की कमेटियों के सदस्य थे।"

(घ) "महाराज ने बाद में मुकदमा वापस तो ले लिया, लेकिन राज्य से अभियुक्तों को निकाल दिया। जो राज्य की नौकरी में थे, उनकी नौकरियां जप्त करलीं और केवल थोड़े से मामलों के बाद में दण्ड माफ कर दिये गये।

पिछले कुछ वर्षों में राजनीतिक आन्दोलन में निर्विवाद रूप से बहुत संख्या में आर्यों ने भाग लिया और अभी दो वर्ष पहले अपने हत्या प्रचारक पत्र में कृष्ण वर्मा ने समाज को तत्सम्बन्धी प्रशंसा पत्र भी दिया था। उसने न केवल यह ही लिखा था कि देश के राजनीतिक उद्धार के लिये चलाये जा रहे आन्दोलनों में आर्य-समाज से शक्तिशाली अन्य कोई संस्था नहीं, बल्कि यह भी लिखा था कि समाज का उद्देश्य ही **उसके प्रवर्त्तक द्वारा घोषित पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्रिय सरकार है** और स्मरण रहे कृष्ण वर्मा को दयानन्द ने अपने जीवन काल में ही पहली राष्ट्रिय सरकार का सदस्य और उनकी मृत्यु के पश्चात् एक स्वीकार पत्र द्वारा उनकी सम्पत्ति का अभि-रक्षक नियत कर दिया था।"

(ङ) १९०७ के बाद यद्यपि पंजाब में कोई भयीण उपद्रव नहीं हुये और यद्यपि इस वर्ष के नये प्रेस एक्ट बन जाने से समाचार पत्र भी कुछ कम जोशीले हो गये हैं, लेकिन बहुत से दण्ड या पकड़-धकड़ विद्रोह के लगातार सुलगने के लक्षण हैं, तथापि प्रान्त हत्याओं और डाकों की घटनाओं से मुक्त ही रहा है, जो बंगाल और दक्खन की बेचैनी का मुख्य अङ्ग हैं। फिर भी अंग्रेजों के विरुद्ध बड़ी जोरदार ज्वाला धधक रही है। इसका कारण कुछ तो बड़े शहरों में बंगालियों (जो कि बड़ी संख्या में पंजाब में आ गये हैं और अपनी उच्च शिक्षा के कारण समाचार पत्रों व वकालत खानों में बड़ा प्रभाव रखते हैं, व प्रचारक हैं, लेकिन उन क्षेत्रों में यह अधिक प्रबल है जहां आर्य समाज का प्रचार अधिक है, क्योंकि यह संस्था बड़ी शक्ति-शाली प्रचारक सिद्ध हो चुकी है।"

इससे आगे इस बात का उल्लेख करते हुये कि "आर्य-समाजी चूंकि शिक्षित हैं इस लिये वह शिक्षित लोगों को शीघ्र सम-विचार बना लेते हैं, सुधारक संस्था होने से पिछड़ी जातियों को अपने में मिला लेते हैं। जमींदारों को अपने प्रचार से प्रभावित कर लेते हैं। यहां तक सिक्ख और नवमुसलिम भी इनके जोरदार समर्थक हो जाते हैं।" वह लिखते हैं--

"इसका बड़ा दुःखदायक रूप यह है कि यह देशीय सेना में भी प्रचार करते हैं, विशेष रूप से जाटों व सिक्खों में, जिनके साथ कई मामलों में इनकी विचार-समानता हैं। आर्यों का यत्न नई भर्ती

को रोकना होता है। यहां तक कि इन्होंने कई एक रेजमेंटों को भी राजभक्ति के विरुद्ध उकसाया है और उनके प्रचारक देशी सेना के केम्पों में भी देखे गये हैं।"

अन्त में वह लिखते हैं –

"आर्यों के प्रचार का सबसे अधिक शरारत पूर्ण परिणाम, जिसकी तत्काल बड़ी चिन्ता हैं कि उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में कटुता बढ़ा दी है और मुसलमानों में यह विश्वास दृढ़ हो रहा है कि आर्य-समाज इस्लाम के भी उतना ही विरुद्ध है जितना अंग्रेजी शासन के।"

द्वितीय उद्धरण –

निम्न उद्धरण नारमन जी बरियर द्वारा लिखित और डचूक यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'आर्य-समाज और कांग्रेस राजनीति पंजाब में १८९१-१९०८' से लिये गये हैं। यह 'एशिया अध्ययन' पत्र में पुनः प्रकाशित अंश हैं –

(क) "उत्तरीय भारत की राजनीति में विशेष रूप से आर्य-समाज का महत्त्वपूर्ण योग-दान इस धारणा को स्पष्ट करता है कि राष्ट्रिय पुनरुद्धारक आर्य-समाज ने हिन्दुओं के सैनिकीकरण में बड़ा सहयोग दिया और हिन्दु-मुसलिम सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा किया। यद्यपि आर्यों की गति-विधियों का इस रूप में अभी नियमित समाधान करना है, परन्तु हिन्दु-मुसलिम सम्बन्धों में विभेद पैदा करने के लिये आर्य-समाज का हिस्सा सर्व विदित है। दूसरी ओर प्रान्तीय व राष्ट्रिय राजनीति में आर्यों के योगदान की ओर या तो ध्यान दिया ही नहीं गया या थोड़ा दिया गया है। यह पुस्तिका मिन्टो मारले कानून से पूर्व पंजाब की राष्ट्रिय जागृति में आर्य-समाज के योगदान को प्रकट करने के लिये लिखी जा रही है। पंजाब कांग्रेस को उठाने और उस का पथ-प्रदर्शन करने का इस समय आर्य-समाज सम्भवतः बहुत बड़ा साधन था। शिक्षित हिन्दु-वर्ग को आर्य-समाज से सम्बन्ध के कारण राजनीतिक जागरण मिला और राजनीतिक कार्यक्रमों को चलाने के लिये प्रोत्साहन भी। १८९९ से लेकर आर्यों ने पंजाब कांग्रेस में भाग लिया और अन्त में उस पर छा गये। यद्यपि आर्यों ने उसमें हिन्दु विचारों का पुनः चलन किया, लेकिन कुछ अंशों में वह धर्म-निरपेक्ष भी रहे। १९०७ के उपद्रवों के बाद आर्यों ने राष्ट्रियता को

सांप्रदायिकता में बदलने का संकट-पूर्ण कार्य किया। इस लिये मेरा अभिप्राय समाज-कांग्रेस के सम्बन्धों में उतार चढ़ाव और पंजाब की राजनीति पर उसके प्रभाव को समझाना है।"

(ख) "यह उल्लेखनीय है कि आर्य-समाज ने व्यापारी और औद्योगिक वर्गों पर अपना प्रभाव बढ़ाकर उन्हें प्रान्तीय व राष्ट्रिय राजनीतिक गति-विधियों का प्रबल समर्थक बना दिया। उनके समर्थन के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व समाज ने अपने सदस्यों के व्यवहार को बदलने और उन्हें क्रियात्मक राजनीतिक शिक्षा देने में क्या कुछ किया, इसका संक्षिप्त वर्णन करना है। आर्य-समाज ने पंजाबी हिन्दुओं को भारत का पुराना इतिहास बताकर उन्हें हिन्दु राष्ट्रियता का गौरव जताकर और भारत की आर्थिक स्थिति सुधारने के साधन सुझाकर उनमें राष्ट्रिय भाव उत्पन्न किये। यह प्रभाव विशेष रूप से लाजपतराय के बौद्धिक विकास से प्रकट था। लाजपतराय नियमित राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे, लेकिन उसके लेखों और भाषणों में कुछ मूल विचार जो दोहराये जाते थे, वह आर्य-समाज के साथ ही सम्बन्द्ध होते से प्रतीत होते हैं। लाजपतराय ने दयानन्द के वैदिक युग को भारतीय सभ्यता के स्वर्णिम दिन के सिद्धान्त को ग्रहण कर लिया, जिसे ब्राह्मणों के छल-कपट और पश्चिमी प्रभाव ने मृतप्रायः कर दिया था। दयानन्द की शिक्षाओं ने भारत के युवा हृदय में भारत के प्राचीन गौरव के पुनः स्थापन की उत्कट भावनायें पैदा कीं और उसके लिये निश्चित कार्य-क्रम दिया। भारत के पुनरुद्धार के लिये देशवासियों को पश्चिम की नकल छोड़ अपनी मान्यताओं और परम्पराओं पर भरोसा करना सिखाया। शिक्षा, चरित्र-गठन और उद्योग सबका भारतीयकरण सुझाया और इस कार्य-क्रम को चलाने की हिन्दुओं की विशेष रूप से जिम्मेदारी बताकर उन्हें ईसाइयों व मुसलमानों से अस्थाई राजनीतिक समझौते करने से मना किया, क्योंकि इससे उनके अपने हितों का हनन होता था।"

(ग) "राजनीतिक कार्यों के लिये उभारने और आर्यों को निश्चित विचार देने के साथ-साथ समाज एक ट्रेनिंग संस्था का काम भी करता रहा, जिस में पृथक् दल बनाने, और राजनीतिक गति-विधियां व्यापक रूप से सिखाई जाती थीं। वाद-विवाद, मतभेद आदि-आदि से परोक्ष रूप से पद प्राप्त कर लेने में बड़ी दक्षता

प्राप्त करना भी उसका अंग था। फिर विभिन्न संस्थाओं में गर्म व नर्म दल बने और नेता लोग पदों व अधिकारों के लिये झगड़ने लगे। अन्त में १८९३ में समाज गुरुकुल और कालेज दो विभागों में बंट गया, लेकिन बंटने के बाद भी पृथक् विभागों में भीतरीय संघर्ष देर तक चलता रहा। लाजपतराय और उसके आर्य साथी विशेष रूप से पंजाब के राजनीतिक क्षेत्र की नेतागिरि के लिये यत्नशील रहे, क्योंकि उन्हें क्रियात्मक रूप में राजनीतिक कार्य-क्रम का अभ्यास था और स्वावलम्बी बनने और हिन्दु-राष्ट्रियता को कार्य रूप देने के लिये उनके पास प्रोग्राम था।"

(घ) "आर्य-समाज एक वर्ग के रूप में गोरक्षा तथा प्रान्तीय व राष्ट्रिय राजनीतिक संगठनों में हिन्दु-हितों की रक्षा के लिये भी बहुत व्यस्त था। अतः आर्य लोग इस भय से कि कहीं अंग्रेज सरकार आन्दोलनों व विद्रोही गति-विधियों पर प्रतिबन्ध न लगा दें, अपनी भीतरीय समस्याओं को सुलझाने का जोर शोर से प्रयत्न करने लगे। लेकिन साथ ही कांग्रेसियों के उदार एवं पश्चिमीयता प्रभावित विचारों पर उन्हें अविश्वास भी होने लगा और वह समझने लगे कि कांग्रेस केवल सभायें करने और प्रस्ताव पारित करने से आगे कुछ नहीं करती, वह देश की आर्थिक व सामाजिक स्थिति सुधारने का क्रियात्मक रूप में कोई प्रोग्राम नहीं देती। वह १८९० और १९०० के मध्य कांग्रेस में धीरे-धीरे आये और उस पर अधिकार कर लिया। १८९४ तक राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने वाले कई बड़े-बड़े आर्य-विरोधी नेता मर चुके थे और उनका स्थान इन नये युग के आर्य नेताओं ने ले लिया था, जिनका विचार था कि आर्यों को समाज से बाहर की गति-विधियों में अधिक भाग लेना चाहिये। कालेज विभाग के कुछ प्रमुख नेता औद्योगिक क्षेत्र में सांझीदार बन गये और १८९५ में जब सरकार ने भारतीय सूती कपड़ों पर कर बढ़ा दिया तो आर्यों ने स्वदेशी सभायें स्थापित करके स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार शुरु कर दिया और छोटी-छोटी वस्त्रों की उद्योगशालायें स्थापित कर लीं। १८९५ के होशियारपुर सम्मेलन को आर्यों का उग्र योगदान मिला। उसके प्रधान लालचन्द थे और ईश्वरदास व द्वारकादास के उसमें जोरदार भाषण हुये। १८९६ और १८९८ के सम्मेलनो में भी आर्य ही प्रमुख थे।

१८९९ के जिमींदारा कानून में तो, जिन में खेती न करने वालों को भूमि का स्वामी होने के अधिकार छीन लिये गये थे, आर्यों ने अन्दोलन में भरपूर सहयोग दिया, क्योंकि इन्हीं के जातीय बन्धु इस कानून से अधिक प्रभावित होते थे। इसी कानून के कारण आर्य लोग अधिक संख्या में कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। १९०० में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में इस लिये निमन्त्रित किया गया कि उपरोक्त कानून के विरुद्ध देशीय सहानुभूति प्राप्त की जाये। लाजपतराय और उनके कई साथी स्वागत समिति के सदस्य बने।

जिमींदारा कानून से आर्थिक हानियों के कारण आर्य लोग कांग्रेस में आये और १९०८ तक उसमें बने रहे। निस्सन्देह इतने वर्षों तक आर्य लोग कांग्रेस पर छाये रहे। यहां तक कि इन की संख्या कांग्रेस समितियों में आधे से अधिक होती थी। आंकड़ों से प्रमाणित होता था कि आर्यों का ही कांग्रेस पर प्रभुत्व है। नेतागिरि की दृष्टि से भी आर्य बहुत बढ़-चढ़ कर थे। इनमें ये नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—रामभजदत्त, हंसराज साहनी, अमोलकराम, धनपतराम, संगमलाल, द्वारकादास, लालचन्द और लाजपतराय। हिन्दु-मुस्लिम सहयोग और राष्ट्रिय एकता के विचारों की संस्था में आर्यों के क्षेत्रीय व सांप्रदायिक विचारों के कारण ही प्रमुखता थी। हिन्दु और मुसलमानों के मतभेदों की आर्य लोग सांप्रदायिक विचार से ही बात करते। सरकारी कागजात से प्रकट होता है कि हिन्दु-मुसलिमों के खिंचाव का मुख्य कारण १८९६ में प्रमुख आर्य लेखराम की हत्या थी। कुछ काल बाद कुछ तो अंग्रेज सरकार के प्रयत्नों से और कुछ शिक्षित पंजाबियों में यह विचार पैदा होने से कि इन घटनाओं को बढ़ाने से बहुत अधिक खून खराबा होगा, अस्थायी शान्ति हो गई। १८९८ से १९०६ तक की यह अस्थाई शान्ति बंगाल में बंग-भंग आन्दोलन के समय हिन्दु-मुसलमानों में संघर्ष से फिर भंग हो गई। यह संयोग की बात है कि आर्यों का सम्बन्ध कांग्रेस से उस समय, जब कि सांप्रदायिक तनाव खत्म हो रहा था और आर्य लोग कांग्रेस आदर्शों अर्थात् राष्ट्रियता और धर्म-निरपेक्ष नीतियों से सहमत हो गये थे।

साथ ही आर्यों का यह भी विचार था कि कुछ न करने

वाली कांग्रेस पर अधिकार करके उसे राष्ट्रिय पुनरुद्धार के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है। पुराने आर्य कांग्रेस से बाहर रहकर स्वदेशी और आत्म-निर्भरता के कार्य-क्रम को ही बढ़ावा देना चाहते थे, लेकिन आर्यों का नया वर्ग कांग्रेस में सम्मिलित हो कर औद्योगिक और शिक्षा के विस्तार के लिये सहायता लेना चाहता था।

इस से आगे लेखक 'अखिल-भारतीय कांग्रेस' पर प्रभुत्व पाने के लिये पंजाबी विशेष रूप से आर्यों और बङ्गाल व बम्बई वालों की होड़ का वर्णन करते हुये यह लिखता है कि "पंजाबियों ने उक्त संस्था में अपनी स्थिति बड़ी सुदृढ़ कर ली। सन् १९०४ तक पंजाब में कांग्रेस कुछ निष्क्रिय-सी रही। तब रूस पर जापान की विजय से भारत में राष्ट्रिय विकास की कुछ आशा बंधी। आर्य-समाज ने तभी फिर औद्योगिक उन्नति और स्वावलम्बन के आन्दोलन के लिये नेता दिये। आर्यों ने जापान से सहानुभूति प्रकट करने के लिये सभायें की, अपने कालेजों में जापानी भाषा पढ़ानी शुरु की और कुछ विद्यार्थी जापान नव-औद्योगिकीकरण सीखने के लिये भेजे। पंजाब की कांग्रेस में नवजीवन डालने के लिये राष्ट्रिय भावों से प्रेरित आर्यों ने जी तोड़ प्रयत्न शुरू किये और पंजाबी शिक्षित वर्ग में राष्ट्रियता की भावनायें उभारने के लिये "पंजाबी" नाम से एक अंग्रेजी दैनिक पत्र निकाला, जिसका उद्देश्य अंग्रेज सरकार की आलोचना और किसी भी मूल्य पर स्वावलम्बन का प्रचार था। उसमें भारत के बीते स्वर्णिम-युग और अंग्रेजी लूट-खसोट पर विशेष लेख होते थे।"

तृतीय उद्धरण--

सन् १९११ की जन-संख्या के अध्यक्ष श्री ब्लन्ट ने आर्य-समाज की आलोचना करते हुये लिखा था—

"The Arya Samaj Doctrine has a patriotic side. The Arya Doctrine and Arya Education alike sing the glories of Ancient India and by so doing arouse a feeling of national pride in its disciples who are made to feel that their country's history is not a tale of humiliation. Patriotism & politics are not synonymous, but the arousing of an interest in national affairs is a natural result of arousing national pride.

अर्थात् "आर्य-समाज के सिद्धान्तों में स्वदेश-प्रेम की प्रेरणा है। आर्य-सिद्धान्त और आर्य-शिक्षा दोनों समान रूप से भारत के प्राचीन गौरव के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायिओं में राष्ट्रिय-गौरव की भावना जागृत करते हैं। इस शिक्षा के कारण ही वह समझते हैं कि हमारे देश का इतिहास परामर्न की कहानी है। देश-भक्ति और राजनीति पर्यायवाची नहीं हैं, किन्तु राष्ट्रिय-कार्यों में प्रवृत्ति का होना राष्ट्रिय-भावना का स्वाभाविक परिणाम है।"

मि० ब्लन्ट ने आगे लिखा है—

"Dayanand was not merely a religious reformer; he was also a great patriot. It would he fair to say that with him religious reform was a mere means to national reform."

अर्थात् "दयानन्द केवल धार्मिक प्रचारक ही नहीं थे। वह बहुत बड़े देश-भक्त भी थे। यह कहना ठीक ही होगा कि उन्होंने समाज-सुधार को राष्ट्रिय-सुधार के साधन रूप ही अपनाया था।"

चतुर्थ उद्धरण—

सन् १९०१ की जन-संख्या के अध्यक्ष मि० बन ने लिखा है—

Dayanand feared Islam & Christianity because he considered adoption of any foreign creed would endanger the national feelings he wished to foster.

अर्थात् "ऋषि दयानन्द को आशङ्का थी कि इस्लाम और ईसाईयत जैसे विदेशी मतों को अपनाने से देशवासियों की राष्ट्रिय-भावनाओं को, जिनको वह जाग्रत करना चाहते थे—ठेस पहुंचेगी।"

श्री वेलेन्टाईन शिरोल ने ठीक ही लिखा था—"**जहां-जहां आर्य-समाज का जोर है, वहां-वहाँ राज-द्रोह प्रबल हैं।**"

अष्टम परिच्छेद

स्वामी दयानन्द के विषय में सम्मितियां

वेदों के निर्दोष व्याख्याकार

महान् क्रान्तिकारी, देशभक्त, **योगिराज श्री अरविन्द**—

"वह दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक, विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाला योद्धा और मनुष्य व संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का वीर विजेता था और इस प्रकार मेरे समक्ष आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति-सम्पन्न मूर्ति उपस्थित होती है। इन दो शब्दों का जो कि हमारी भावनाओं के अनुसार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, मिश्रण ही दयानन्द की उपयुक्त परिभाषा प्रतीत होती है। उसके व्यक्तित्व की व्याख्याएं की जा सकती हैं—एक मनुष्य जिसकी आत्मा में परमात्मा है, चर्म-चक्षुओं में दिव्य तेज है और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन तत्त्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति गढ़ सके तथा कल्पना को क्रिया में परिणत कर सके। वह स्वयं दृढ़ चट्टान थे। उनमें दृढ़ शक्ति थी कि चट्टान पर घन चला कर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सकें। प्राचीन सभ्यता में विज्ञान-भेद विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ को अर्वाचीन विद्याओं ने ढूंढ लिया है, उनका परिवर्धन किया है और उन्हें अधिक समृद्ध या स्पष्ट कर दिया है, किन्तु दूसरे अभी तक निगूढ़ ही बने हुए हैं। इसलिये दयानन्द की इस धारणा में कोई अवास्तविकता नहीं है कि **वेदों में विज्ञान-सम्मत तथा धार्मिक सत्य निहित है।**

वेदों का भाष्य करने के बारे में मेरा विश्वास है कि चाहे अन्तिम पूर्ण अभिप्राय कुछ भी हो, **किन्तु इन बातों का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उसने सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिये निर्दोष मार्ग का आविष्कार किया था।** चिरकालीन अव्यवस्था

और अज्ञान—परस्पर के अन्धकार में से सूक्ष्म और मर्मभेदी दृष्टि से उसी ने सत्य को खोज निकाला था। जंगली लोगों की रचना कही जाने वाली पुस्तक के भीतर उसके धर्म पुस्तक होने का वास्तविक अनुभव उन्होंने ही किया था। **ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुञ्जी प्राप्त की है, जो युगों से बन्द थे और उनसे पटे हुये झरनों का मुख खोल दिया।**"

सच्चे मार्ग-दर्शक

नोबल पुरस्कार विजेता विश्वकवि **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**—

"मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिसके मन में भारतीय जीवन के सब अङ्गों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारंबार प्रणाम हो।

.....**मैं आधुनिक भारत के मार्ग-दर्शक उस दयानन्द को** आदरपूर्वक श्रद्धांजलि देता हूं, जिसने देश की पतित अवस्था में भी हिन्दुओं को प्रभु की भक्ति और मानव-समाज की सेवा के सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।"

स्वराज्य के सर्वप्रथम संदेश-वाहक

'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है" के उद्घोषक **श्री लोकमान्य तिलक**—

"ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे, जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोये हुये भारत को जागृत किया। **"स्वराज्य" के वे सर्व-प्रथम सन्देश-वाहक** तथा मानवता के उपासक थे"

आधुनिक ऋषियों में महान्

अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के प्रवर्त्तक **महात्मा गांधी**—

"महर्षि दयानन्द के विषय में मेरा मन्तव्य यह है कि वह हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों, श्रेष्ठ पुरुषों में से एक थे।

उनका ब्रह्मचर्य, विचार-स्वतन्त्रता, सर्व-प्रति प्रेम, कार्य-कुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है। मैं जैसे-जैसे प्रगति करता हूं, वैसे-वैसे मुझे महर्षिजी का बताया मार्ग दिखाई देता है। ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पश्चात् जनता के साथ सीधा सम्पर्क रखने का मार्ग महर्षि दयानन्द ने खोज निकाला। इसका यश महर्षि दयानन्द एवं उनकी आर्य-समाज को प्राप्त है। महर्षि दयानन्द तथा उनकी आर्य-समाज ने प्रजा में नव-चेतना को पैदा किया है। हिन्दु-समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रिय शिक्षण, स्त्री-शिक्षण तथा दलितोद्धार आदि न भुलाई जा सके जैसी राष्ट्र की महान् सेवा की है। मुझे आर्य-समाज बहुत ही प्रिय है। महर्षि दयानन्द के इस पवित्र देशोपकारी कार्य का कभी भी अपमान होगा तो मैं उसको महापाप समझूंगा।"

भारतीय स्वतन्त्रता के दिव्य-द्रष्टा

राष्ट्र के महान् तपस्वी नेता महामना **श्री मदनमोहन मालवीय**--

"महर्षि दयानन्द तपोमूर्ति थे। उन्होंने भारत में दिव्य ज्योति प्रकाशित की थी। उन्होंने हिन्दु-समाज को पुनर्जन्म देने के सब प्रयत्न किये थे। **वे भारत को स्वतन्त्र तथा दिव्य देखना चाहते थे।** आर्षकाल को पुनः लाने के लिये वे प्रयत्नशील रहे। उन्होंने मृतप्राय हिन्दू जाति में पुनः प्राण संचार किया था। वे हिन्दु-संस्कृति की अप्रतिम प्रतिमा तथा भारत माता के अक्षय (अमर) पुत्र थे।"

हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिये के उद्घोषक

भारत-भक्त **श्रीमती एनी बेसण्ट**—

"महर्षि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने "हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिये" का नारा लगाया था। स्वामी दयानन्द ने वेदों तथा उपनिषदों द्वारा भारत के प्राचीन गौरव को सिद्ध करके बता दिया और संसार को दिखा दिया कि भारतवर्ष दर्शन-शास्त्र तथा आध्यात्मिक विद्या की खान (भण्डार) है। जिससे भारत में रहने वाले लोग मानते हैं कि **"भारत की प्राचीन महिमा तथा गौरव पागलों का प्रलाप नहीं, परन्तु सत्य है।"**

कलकत्ता कांग्रेस १९१७ की अध्यक्षता करते हुये श्रीमती एनी बेसन्ट ने अपने अध्यक्षीय भाषण में निम्न शब्द कहे—

"The undermining of this belief dates from the spreading of the Arya Samaj and the Theosophical Society. Both bodies sought to lead the Indian people to a sense of the value of their own civilisation, to pride in their past, creating self-respect in the present, and self-confidence in the future. They destroyed the unhealthy inclinatlon to imitate the West in all things, and taught discrimination using only of what was valuable in Western thought and culture instead of mere slavish copy of everything."

"इस धारणा को नष्ट करने का विचार आर्य-समाज और थियोसोफीकल सोसाइटी के विस्तार से ही आरम्भ हो गया था। दोनों संस्थाओं ने भारतीय जनता में अपनी सभ्यता के गौरव का प्रचार किया। अपने भूतकाल पर गर्व—वर्तमान में आत्म-सम्मान और भविष्य में आत्म-विश्वास के विचार भरे। उन्होंने पश्चिम के अन्धानुकरण को खत्म किया और उसमें जो भी अच्छी बात है, उसे अपनाने की शिक्षा दी।"

मेरे मार्ग-दर्शक

प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता **श्यामजी कृष्ण वर्मा**—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती को मैं अपना मार्ग-दर्शक गुरु मानता हूं। उनके चरणों में रहकर मैंने बहुत कुछ पाया है। उनकी मुझ पर सदैव कृपा रहती थी। स्वामी जी की यह इच्छा थी कि विदेशों में भी वैदिक विचारधारा का प्रचार हो। उन्होंने मुझे विदेशों में वैदिक संस्कृति का प्रचार करने की प्रेरणा दी।

मैंने राष्ट्र, जाति तथा समाज की भी जो सेवा की है, उसका श्रेय महर्षि दयानन्द को प्राप्त है। **मैंने जो कुछ प्राप्त किया है, उसमें सबसे बड़ा हाथ उस सर्वहितैषी, वेदज्ञ, तेजस्वी युगद्रष्टा का है। मुझे उस स्वतन्त्र विचारक का शिष्य होने का अभिमान है।**"

स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा

महान् क्रान्तिकारी, सर्वस्व त्यागी, **स्वातन्त्र्य-वीर सावरकर**—

"महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा, हिन्दु जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की है और कर रही है। आजादी की लड़ाई में आर्य-समाजिकों का बड़ा हाथ रहा। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" हिन्दू जाति की रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला ग्रन्थ है। "सत्यार्थप्रकाश" की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।"

देशभक्ति की ज्योति जलाने वाले

क्रान्तिकारी उग्रवादी नेता **लाला हरदयाल**—

"ऋषि दयानन्द ने भारतवर्ष के वृक्ष को जल सिंचन किया था। उनके शुभ प्रयास से विविध प्रकार के स्वादिष्ट फल मिले और मिलेंगे। स्वामी जी ने युवकों के हृदय में त्याग, परोपकार और **देश भक्ति की ज्योति जगाई थी।** हिन्दू जाति की जो उन्नति दिखाई दे रही है, उसका श्रेय स्वामी जी को ही प्राप्त है। भारतवर्ष के इतिहास में स्वामी जी का नाम महान् सुधारकों की पवित्र श्रेणी में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।"

आधुनिक भारत के निर्माता

आजाद हिन्द फौज के निर्माता व सेनापति एवं भारत के अनभिषिक्त सच्चे राष्ट्रपति **सुभाषचन्द्र बोस**—

"महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, **जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया** और जो उनके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता हैं। हिन्दु-समाज का उद्धार करने में 'आर्य-समाज' का बहुत बड़ा हाथ है। रामकृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया, उससे कहीं अधिक आर्य-समाज ने पंजाब और उत्तर प्रदेश में किया है। **यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि पंजाब का प्रत्येक नेता आर्य-समाजी है।** स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूं।

वैदिक सूर्य

स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी, देवतास्वरूप, त्यागवीर **भाई परमानन्द** एम० ए०—

"स्वामी दयानन्द एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भ हैं, जिन्होंने असंख्य लोगों को सत्य का मार्ग बतलाया है। उनके देश तथा देश की जनता पर किये गये उपकार सदैव अमर रहेंगे।

महर्षि वर्तमान अन्धकार युग के लिये 'वैदिक सूर्य' थे। मैं अपने को उनका अनुयायी कहलाने में गर्व अनुभव करता हूं। मैं उनके प्रशंसकों में हूं।"

आत्मरक्षा का मार्ग दिखाने वाले महापुरुष

भारतीय जनसंघ के संस्थापक, अखण्ड भारत के उद्घोषक **डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी**—

"महर्षि ने अपने ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" में देश की राजनीतिक दशा पर भी स्पष्ट भाषा में अपना अभिमत प्रकट कर दिया है--

" ·····**कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं।**" क्या हमारी राजनीतिक दासता का इससे अधिक विशद तथा साहसपूर्ण विश्लेषण सम्भव है ?

····· ऋषि ने अपने देशवासियों तथा समस्त विश्व को 'सत्यार्थप्रकाश' के रूप में जो अविनश्वर वसीयत दी है, वह उनकी प्रकाण्ड प्रतिभा का प्रतीक है। इस ग्रन्थ में वह हमारे सम्मुख एक उत्पादक, कलाकार, समीक्षक, संहारक तथा निर्माता के रूप में प्रकट हुआ है।

·····ऋषि ने अपने दर्शन 'सत्यार्थप्रकाश' में एक ऐसे स्वतन्त्र भारत की कल्पना की है, जो वर्तमान परिस्थितियों तथा अवस्थाओं में स्वकीय संस्कृति तथा सभ्यता की अमूल्य परम्पराओं के साथ समस्वर करके ही निर्माण कर सकता है।"

नवीन इतिहास के सर्जक

आर्यन नेशन के स्वप्नद्रष्टा, महान् क्रान्तिकारी, देशभक्त, सर्व-स्व-त्यागी **राजा महेन्द्रप्रताप**—

"अपने नवीन इतिहास पर ऋषि दयानन्द जी के जीवन ने विशेष असर किया है, इसमें कोई शंका का स्थान नहीं है। कांग्रेस तथा गांधी जी को अनेक कार्यकर्त्ता ऐसे मिले, जो कि किसी न किसी प्रकार आर्य-समाज की नई विचार धारा से रंगे हुये थे।

.....आर्य-समाज क्रान्तिकारियों की संस्था है। इनके मेम्बरों में देश-प्रेम की भावना है।"

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं

"यह लाठियां अंग्रेज साम्राज्य की अर्थी में कील बनकर रहेंगी" की घोषणा करने वाले अमर शहीद **लाला लाजपतराय**—

"**स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। संसार में मैंने सिर्फ उन्हे अपना गुरु माना है। आर्यसमाज मेरी माता है।** इन दोनों की गोद में मैं खेला हूं। मेरा हृदय और मस्तिष्क दोनों को उन्होंने घड़ा है। मेरे गुरु एक महान् स्वतन्त्र मनुष्य थे, इस का मुझे अभिमान है। उन्होंने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना सिखाया है।

यह मेरा निश्चित मत है कि महात्मा गान्धी के असहयोग कार्य-क्रम में एक भी विचार ऐसा नहीं है, जो स्वामी दयानन्द जी महाराज की शिक्षा में न मिलता हो।

सरदार भगतसिंह आर्यसमाज की देन है

अमर शहीद सरदार भगतसिंह के छोटे भाई **रणवीरसिंह**—

"आर्यसमाज में मेरे दादा सरदार अर्जुनसिंह जी शामिल थे, फिर मेरे पिता सरदार किशनसिंह जी और चाचा सरदार अजीतसिंह जी को महात्मा हंसराज जी तथा लाला लाजपतराय के साथ समाज का कार्य करने का शुभ अवसर प्राप्त रहा है। **हम चारों नहीं, बल्कि पांचों भाई यानी सरदार भगतसिंह जी भी डी० ए० वी० स्कूल में पढ़ते रहे हैं—और हमारे विचारों और मानसिक उन्नति भी बड़ी हद तक आर्य-समाज की देन हैं।** इसलिए और बहुत से दूसरे उपकारों के लिये हम आर्य-समाज के ऋणी हैं।"

सत्यार्थप्रकाश ने जीवन बदल दिया

शहीद सम्राट् **रामप्रसाद "बिस्मिल"**—

"देव मन्दिर में पूजा-पाठ करते देख श्री मुन्शी इन्द्रजीत ने मुझे सन्ध्या करने का उपदेश दिया।

श्री मुन्शी जी ने उसी अर्से में आर्य-समाज सम्बन्धी बहुत सी जानकारी दी। उसके पश्चात् **मैंने "सत्यार्थप्रकाश" पढ़ा, और उससे मेरे जीवन का लक्ष्य बदल गया। "सत्यार्थ-प्रकाश" ने मेरे जीवन के इतिहास का एक नया पृष्ठ खोल दिया।**

प्रखर क्रान्तिवादी पुरुष

महान् दार्शनिक विद्वान्, स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रपति **श्री सर्वपलि डा० राधाकृष्णन्**—

जब आध्यात्मिक अव्यवस्था, सामाजिक कुरीतियां तथा राजनैतिक दासता देश को जकड़े हुए थी, **तब महर्षि दयानन्द ने राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उद्धार का बीड़ा उठाया।** सत्य, सामाजिक एकता और एक ईश्वर की आराधना का संदेश उन्होंने दिया। उन्होंने शिक्षा व ईश्वर पूजा की स्वतन्त्रता सभी के लिए उपलब्ध करने पर बल दिया था। भारत के संविधान में सामाजिक क्षेत्र के लिए अनेक व्यवस्थाएं महर्षि दयानन्द से प्रेरणा लेकर ही की गई हैं।

स्वामी जी ने "स्वराज्य" का जो सबसे पहले सन्देश हमें दिया था, उसकी आज हमें रक्षा करनी है। उनके उपदेश सूर्य के समान प्रभावशाली हैं।

साम्प्रदायिकता-रहित राजनीतिक पुरुष

आर्य-सभ्यता की मूर्ति, हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक, कांग्रेस अध्यक्ष राज-ऋषि **पुरुषोत्तमदास टण्डन**—

"मैं स्वामी दयानन्द जी को साम्प्रदायिक नहीं मानता। मेरे विचार में वे महान् थे। उनका धर्म विस्तृत था, **मैं उनको राजनीतिक पुरुष भी मानता हूं।**"

मेरे सच्चे राजनीतिक गुरु

"राष्ट्र के महान् नेता, स्वाधीनता संग्राम के महान् योद्धा, **प्रेसीडेन्ट विट्ठलभाई पटेल**—

"बहुत से लोग महर्षि दयानन्द को सामाजिक और धार्मिक सुधारक कहते हैं, **परन्तु मेरी दृष्टि में तो वे सच्चे राजनीतिक थे।** उन्होंने ही इस देश में सर्व प्रथम स्पष्ट घोषणा की कि—"**चाहे कितना भी विदेशी राज्य अच्छा क्यों न हो, तो भी वह अपने स्वराज्य के बराबर नहीं हो सकता।** ४० वर्षों से कांग्रेस का जो कार्य-क्रम रहा है, **वह सब कार्य-क्रम आज से ६० वर्ष पूर्व ऋषि दयानन्द ने देश के सामने रखा था। सारे देश में एक भाषा, खादी, स्वदेश-प्रचार, पंचायतों की स्थापना, दलितोद्धार, राष्ट्रिय और सामाजिक एकता, उत्कट देशाभिमान और स्वराज्य की घोषणा, यह सब महर्षि दयानन्द ने देश को दिया है।** वर्तमान कांग्रेस का प्रत्येक अंश भगवान् दयानन्द ने ही बनाया है। सचमुच हम भाग्य-हीन थे। यदि ६० वर्ष पहले इस कार्य-क्रम को समझ कर आचरण किया होता तो भारतवर्ष कब का स्वतन्त्र हो गया होता।

"**मैं ऋषि दयानन्द को अपना राजनीतिक गुरु मानता हूं। मेरी दृष्टि में तो वे महान् विप्लववादी नेता और राष्ट्र-विधायक थे।**"

मार्ग-प्रदर्शक

लौह-पुरुष, हिन्दुत्व अभिमानी, राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने वाले **सरदार वल्लभ भाई पटेल**—

"**स्वामी दयानन्द जी के राष्ट्र-प्रेम**, उनकी हिम्मत, ब्रह्मचारी जीवन और अन्य कई गुणों के लिए मुझे उनके प्रति मान है। अपने समाज में उस समय जो-जो त्रुटियां थीं, खराबियां, कुरीतियां, अज्ञानता, वहम और बुराइयां थीं, उनको स्वामी जी ने दूर करने के लिए बलवा पुकारा। यदि स्वामी जी न होते तो हिन्दु-समाज की क्या हालत होती, इसकी कल्पना भी कठिन है।

आज देश में जो भी कार्य चल रहे हैं, उनका मार्ग स्वामी जी वर्षों पूर्व बता गये थे।"

सोये समाज को जगाने वाले

हिन्दुत्व अभिमानी, प्राचीनता के प्रतीक, राष्ट्रिय स्वयं-सेवक संघ के संचालक **गुरु गोलवलकर**—

"अपनेपन के उद्दीप्त स्वाभिमान के साथ महर्षि दयानन्द ने सोये हुए समाज को जागृत किया। अनुकरण की गुलाम वृत्ति पर छा करके **स्वतन्त्र प्रतिभा-युक्त राष्ट्रिय श्रद्धा का सन्देश दिया। जीवन का कोई भी कार्य-क्षेत्र उन के विचारों से अछूता नहीं रहा।**

देश तथा समाज के उद्धारक

स्वतन्त्र भारत के भूतपूर्व गृहमन्त्री पं० **गोविन्दवल्लभ पंत**—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती ने देश तथा समाज की मानसिक एवं बौद्धिक उन्नति के लिये जो कुछ किया है, उसके लिये राष्ट्र हमेशा उनका ऋणी रहेगा।"

महान् राष्ट्र नायक

स्वतन्त्र राष्ट्र के लोकप्रिय द्वितीय प्रधान मन्त्री **लालबहादुर शास्त्री**—

"**महर्षि दयानन्द महान् राष्ट्र नायक नेता और क्रान्तिकारी महापुरुष थे**। उन्होंने व्यावहारिक रूप से जीवन के प्रत्येक पहलू में अपनी छाप छोड़ी है। स्वामी जी को श्रद्धा-पूर्वक स्मरण किया जाना चाहिये। उन्होंने देश में धार्मिक, सांस्कृतिक और **राजनीतिक क्षेत्र में जो काम किया वह अभूतपूर्व** है। उन्होंने जो काम पकड़ा उसे पूरी तरह से निभाया। उन्होंने हिन्दु धर्म का कल्याण किया। वह बड़े दृढ़ व्यक्ति थे। उन जैसे क्रान्तिकारी नेता होना बिरले ही लोगों का काम होता है। उन्होंने ऐसे समय में देश का नेतृत्व किया, जिस समय बुराइयों की ओर संकेत करना भी कठिन काम था। उन्होंने हिन्दी राष्ट्रभाषा होने का घोष नाद किया और छूत-छात तथा जात-पांत के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। स्वराज्य और स्वदेशी की उन्होंने ऐसी लहर चलाई, जिससे इण्डियन नेशनल कांग्रेस के निर्माण की पृष्ठ-भूमि तैयार हो गई।"

पददलित भारत के उत्थाता

गुजरात-केसरी, विचारक, लेखक, वक्ता **मोरार जी देसाई**--

"...महर्षि दयानन्द ने पददलित भारत का पुनरुत्थान किया तथा राष्ट्र को नव-जीवन का संदेश दिया। उन्होंने सामाजिक क्रांति की एवं अन्ध-श्रद्धा को दूर करने की कोशिश की और राष्ट्र का निर्माण किया।"

एक भाषा के इच्छुक

महर्षि के भक्त **वाई० बी० चह्वाण**—

"स्वामी दयानन्द जी अन्धकार दूर करने वालों में अग्रणी थे। अपनी दिव्यदृष्टि से उन्होंने भारत का सांस्कृतिक निर्माण किया। स्वामीजी ने राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रेरणा की और उस वातावरण को तैयार किया, जिससे पीछे प्रेरणा पाकर गांधीजी, लोकमान्य तिलक तथा पं० नेहरू जैसे नेताओं ने काम करके देश को स्वतन्त्र कराया। स्वामी जी ने भारत में एक नई व्यवस्था का आधार रखा। उन दिनों में ही उन्होंने अनुभव कर लिया था कि भारत को संगठित रखने के लिये **एक संयुक्त भाषा आवश्यक है और केवल 'हिन्दी' ही वह काम कर सकती है।**"

राष्ट्र के पितामह

भारतीय लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष व आर्य-सभ्यता के पुजारी **अनन्तशयनम् आयंगर**—

"गांधीजी राष्ट्र के 'पिता' थे, तो **महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र के 'पितामह' थे। महर्षिजी हमारी राष्ट्रिय प्रवृत्तियों के और स्वाधीनता आन्दोलन के आद्य-प्रवर्त्तक थे।** गांधीजी उन्हीं के पद चिह्नों पर चले।

यदि महर्षि दयानन्द हमें मार्ग न दिखाते तो **अंग्रेजी शासन में उस समय सारा पंजाब मुसलमान बन जाता और सारा बंगाल ईसाई हो जाता।** महर्षि जी ने सारे विश्व को 'आर्य' बनाने की प्रेरणा दी।

.....महर्षि दयानन्द दिव्य महापुरुष थे। उन्होंने ईसाई मत और इस्लाम के हमलों से देश की रक्षा की।"

राजकीय उत्थान के महान् गुरु

महाराष्ट्र के वयोवृद्ध कर्मठ, हिन्दुत्व अभिमानी नेता **एम० वी० गाडगील**—

महाराष्ट्र में जो स्थान **छत्रपति शिवाजी** अथवा **समर्थ गुरु रामदास** का है, वही स्थान भारत के **राजकीय उत्थान में महर्षि दयानन्द** का है।"

स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा

स्वतन्त्र भारत के भूतपूर्व रक्षा-मन्त्री **डा० कैलाशनाथ काटजू**—

"स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम भारत की स्वतन्त्रता का बीज बोया था। भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सर्वप्रथम उन का नाम लिखा जायगा।"

सर्वप्रथम स्वतन्त्रता का वृक्ष लगाने वाले

स्वतन्त्र भारत के भूतपूर्व रक्षा-मन्त्री **श्री महावीर त्यागी**—

"मैंने आर्य-समाज का कार्य किया। उन दिनों मैं आर्य-समाज के उत्सवों में बड़े उत्साह से भाग लेता था—व्याख्यान देता था। मैं आर्य-समाज के प्रभाव के कारण ही कांग्रेस में आया। मुझे इस बात को स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि **स्वामी दयानन्द जी ने ही भारत की स्वतन्त्रता का वृक्ष लगाया**, महात्मा गांधी ने उसे सींचकर बड़ा किया।

.....आर्य-समाज एक आन्दोलन है जो विश्व को एक परिवार के रूप में समझता है। आर्य-समाजियों को स्वामी दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ाने के लिये जोर-शोर से कार्य करना चाहिये, इसी में विश्व का कल्याण होगा।"

स्वराज्य का रहस्य 'सत्यार्थप्रकाश' में

स्वतन्त्र पक्ष के अध्यक्ष, आन्ध्र के लोक प्रिय नेता **प्रो० रंगा**—

"मुझे कारावास में महर्षि दयानन्द लिखित 'सत्यार्थप्रकाश'

पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा **मैंने स्वराज्य का रहस्य 'सत्यार्थ-प्रकाश' में पाया**। यदि हमारी यह प्राचीन जाति 'सत्यार्थप्रकाश' की शिक्षाओं के अनुसार चले तो इस पृथिवी की कोई शक्ति हमारी स्वाधीनता को नहीं मिटा सकती। 'सत्यार्थप्रकाश' हमें आन्तरिक स्वराज्य प्राप्त करने की शिक्षा देता है और वह तपस्या, संयम या एक शब्द में 'ब्रह्मचर्य' के द्वारा प्राप्त होता है। एक बार जहां आन्तरिक 'स्वराज्य' मिला, बाह्य साम्राज्य अपने आप सुरक्षित रहेगा।

मेरे आदरणीय गुरुदेव

स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी, विदेश में वैदिक विचार-धारा के प्रचारक **स्वामी सत्यदेव परिवाजक**—

"यह उसी योजना का परिणाम है कि मैं आज अपनी इस बहत्तर (७२) वर्ष की आयु में अपनी गुफा में बैठा हुआ अपने देश की स्वाधीनता का रूप देख रहा हूं और अपने पिछले जीवन का सिंहावलोकन कर रहा हूं। मुझे जो कुछ मिला है, वह ऋषिजी की कृपा का फल है, जिसके कारण मैंने कई बार पृथिवी-प्रदक्षिणा कर नवीन अनुभव प्राप्त किये। कैसा संग्राम मुझे अपने जीवन में करना पड़ा है और स्वामी जी के आदर्शों पर चलने के लिये कैसे कैसे भीषण युद्ध करने पड़े हैं, आज उनका स्मरण कर बड़ी श्रद्धा से स्वामी जी को वन्दना करता हूं।"

स्वराज्य का मार्ग बताने वाले

भारत की सर्वोच्च अदालत सुप्रीमकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश **डा० मेहरचन्द जी महाजन**—

".....उन्होंने हमें स्वराज्य का मार्ग बताया और सच्ची राष्ट्रियता प्राप्त करने के लिये आह्वान किया और राष्ट्रिय एकता के लिये हिन्दी भाषा का प्रचार किया। अस्पृश्यता को मिटाया और अछूतपन के कलंक से पीड़ित अपने करोड़ों देश-बन्धुओं को अपने गले लगाया। स्त्री और शूद्रादि को वेद पढ़ने का अधिकार है—यह भी सिद्ध कर दिखाया। स्त्रियों को ऊपर उठाया, उनको समान अधिकार दिला कर शिक्षणालय का मार्ग बताया। वैदिक

संस्कृति का सच्चा स्वरूप समझा कर बताया कि स्त्रियां तो अपनी सिरताज और शोभा हैं। **महर्षि ने कहा कि परदेशी शिक्षण को छोड़ कर देशी शिक्षण प्राप्त करो**। और अपने गुरुकुल व विद्यालय खोलने का आदेश दिया। संक्षेप में कहूं तो महर्षि ने कुछ भी बाकी छोड़ा नहीं। उन्होंने कहा कि यदि हिन्दु, ईसाई, मुसलमान बन सकता है, तो ईसाई-मुसलमान भी हिन्दु बन सकते हैं। उनके लिये **उन्होंने शुद्धि की संजीवनी-बूटी संसार के सामने रक्खी।**

सच्ची देश-निष्ठा की मूर्ति

महर्षि दयानन्द के समकालीन, उनके परम भक्त जस्टिस **महादेव गोविन्द रानाडे**—

"महर्षि दयानन्द में धार्मिक उत्साह भरा हुआ था। उनमें वीरोचित कर्मण्यता की भावना विद्यमान थी, जिसकी उत्पत्ति इस विश्वास से हुई थी कि कोई उच्च सत्ता मेरे कार्य का संरक्षण कर रही है। समय की आवश्यकताओं को देखने की उन्हें जो सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त थी वह अलभ्य थी। उसमें लक्ष्य की सिद्धि की दृढ़ता ऐसी अटूट थी कि कोई भी विपत्ति वा प्रतिकूलता उसे झुका न सकती थी। उन जैसी तत्परता और साधन-सम्पन्नता विरलों को ही प्राप्त होती है। उनकी सच्ची देशनिष्ठा समय से कहीं आगे बढ़ी हुई थी। दया से द्रवित उनकी न्याय-भावना देखते ही बनती थी। यही सब गुण और विशेषताएं उनकी शक्ति का स्रोत था, जिन्होंने उन्हें आर्य-समाज जैसे महान् आन्दोलन को संचालित करने में समर्थ बनाया था।"

विशुद्ध राजनीतिक विचार-धारा के प्रोत्साहक

इण्डियन नेशनल कांग्रेस के इतिहास के लेखक **डा० पट्टाभि सीतारामय्या**—

इण्डियन नेशनल कांग्रेस का इतिहास १८८५ से १९३५ तक का लिखते हुये डा० पट्टाभि सीतारामय्या ने पृष्ठ १३-१४ पर निम्न शब्द कहे हैं—

"The Arya Samaj in the North-West founded by the Venerable Swami Dayanand Saraswati, furnished the necess-

ary corrective to the spirit of Heterodoxy & even heresy, which the Western learning brought with it. It was an intensely nationalist movement, which owed its inspiration to the great Dayanand Saraswati and was aggressive in its patriotic zeal, and while holding fast to the cult of infallibility of the Vedas and the superiority of the Vedic culture, was at the same time not inimical to broad social reforms. It thus developed virile manhood in the nation, whlch was the synthesis of what was best in its heredity with what is best in its environments. It fought some of the prevailing social evils and religions superstitions in Hiuduism much as the Brahmo Samaj had battled against polytheism, idolatory & polygamy."

"उत्तर पश्चिम में आदरणीय स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित आर्य-समाज ने पश्चिमी शिक्षा के कारण प्रचलित अन्धानुकरण और धर्म-विरोध को सुधारने में बहुत प्रयत्न किया। यह **एक विशुद्ध राजनीतिक विचार-धारा है, जिसे महान् स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रोत्साहित किया और जो राष्ट्रियता के प्रसार में अग्रगामी** है और साथ ही वेदों तथा वैदिक सभ्यता में जिसकी अटूट श्रद्धा है और जो समाज सुधार की उदार योजनाओं में भी विश्वास रखती है। इस तरह से यह राष्ट्र में शक्ति-शाली मनुष्यता पैदा कर रही है, जिसे अपने भूत-काल की परम्पराओं पर गर्व है और जो वर्तमान से भी लाभ उठाती है। यह हिन्दुओं में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों व रूढ़ियों के विरुद्ध भी संघर्ष कर रही है।"

एक और स्थान पर लिखते हैं—

"यह तो अभी रहस्य की बात है कि कांग्रेस की कल्पना वास्तव में किस दिमाग से निकली। कोई भी इस कल्पना का मूल उत्पादक हो, कहीं से भी यह पैदा हुई हो, हम इन परिणामों पर अवश्य पहुंचते हैं कि यह कल्पना वातावरण में घूम अवश्य रही थी। विदेशी शब्द कांग्रेस को छोड़िये, शब्दों के जाल में उलझने से क्या लाभ। **इस कल्पना का मूल उत्पादक हैं महर्षि दयानन्द।**"

स्वराज्य-प्रेरणा-दायक

प्रसिद्ध पारसी-नेता **दादाभाई नोरोजी**—

श्रीयुत दादाभाई नोरोजी एक दिन सत्यार्थप्रकाश के पन्ने उलट रहे थे। लोकमान्य तिलक ने हंसी में उनसे कहा—"क्या आर्य-समाजी हो गये हो?" दादाभाई ने उत्तर दिया—"नहीं, **मुझे स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों से स्वराज्य की लड़ाई में बड़ी प्रेरणा मिलती है।**" [सैनिक समाचार २०. १०. ६८]

विदेशी विद्वानों की सम्मतियां

स्वराज्य के लिये समर्थ बनाने वाला

न्यायाधीश पी. हेरिसन—

पी. हेरिसन जिलाधीश इलाहाबाद ने १९०२ में एक मुकद्दमे में निर्णय देते हुये लिखा—

"महर्षि दयानन्द के उपदेशों का उद्देश्य लोगों को सुधार के लिए प्रेरित करना है, ताकि वह इस योग्य हो सकें कि वह किसी दिन **अपने देश का राज्य संभाल सकें**। उनमें न तो हथियार उठाने का आदेश है और न युद्ध की घोषणा।"

पी. हेरिसन ने अन्यत्र लिखा है—

"बहुत से धार्मिक तथा सदाचार सम्बन्धी कारणों के कारण हिन्दु परतन्त्र जाति बनी, उस पर ऋषि दयानन्द ने खेद व्यक्त किया था। दयानन्द के प्रचार का मुझे एक उद्देश्य दिखाई देता है—कि देश को स्वराज्य प्राप्त हो।"

आर्य-समाजी की खाल में क्रान्तिकारी दयानन्द

एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज ने निम्न शब्द कहे—

"किसी भी आर्य-समाजी की खाल को खुरच कर देखो, तो अन्दर छिपा हुआ क्रान्तिकारी देश-भक्त दयानन्द दिखाई देगा।"

दावानल-प्रज्ज्वालक

अमेरिका के एक परोक्ष-दर्शी विद्वान् **एण्ड्रयूज जेक्सन डेविस** ने अपनी पुस्तक में लिखा—

"मुझे एक आग दिखाई पड़ती है, जो कि सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जला कर शुद्ध कर रही है। यह आग सनातन आर्य धर्म को स्वाभाविक पवित्र दशा में लाने के लिये एक भट्टी रूप में थी, जिसे आर्य-समाज कहते है। यह आग भारतवर्ष के एक परम योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशमान हुई थी। रूढ़िवादी हिन्दु और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिये चारों ओर वेग से दौड़े, परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके प्रकाशक दयानन्द को ध्यान भी न था—"

दयानन्द के सिद्धान्त स्वधर्म-स्वराज्य-स्वदेशी-स्वभाषा

एक और विद्वान् ने लिखा—"यदि हम राजनीति के प्रकरण में महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तावित मन्तव्यों का सरल संक्षेप करना चाहें तो वह चार शीर्षकों में आ जाते हैं—**स्वधर्म, स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा**। यह स्वाभाविक ही था कि सामान्य रूप से उस समय के आर्य-समाजी स्वधर्म के साथ ही साथ स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा के भी भक्त होते। प्रथम युग से ही आर्य जनता में गहरी देश-भक्ति की भावना पाई जाती थी। **देश-भक्ति एक आर्य-समाजी बालक को घुट्टी में ही पिलाई जाता थी**। फलतः उसका झुकाव प्रत्येक ऐसी संस्था की ओर रहता था, जिसका लक्ष्य अपने देश को विदेशियों के बन्धन से स्वतन्त्र कराना हो।"

●

नवम परिच्छेद

स्वामी दयानन्द का स्वीकार-पत्र

रायबहादुर मूलराज एम. ए. एक्सट्रा असिस्टेंट कमिश्नर लाहौर, वह व्यक्ति थे जो प्रारम्भिक काल में महर्षि के सम्पर्क में आये और उनके विचारों एवं उपदेशों से प्रभावित हुये तथा ऋषि के विश्वास-पात्र बने। महर्षि ने अपनी सम्पत्ति (जैसे प्रेस-पुस्तकें आदि, मूल्य लगभग साठ हजार रुपये) के प्रबन्ध और सुव्यवस्था के लिये परोपकारिणी सभा के रूप में जो समिति २७ फरवरी १८८३ में उदयपुर में अपने स्वीकार-पत्र के रूप में रजिस्टर्ड करवाई, उनमें निम्न महानुभावों को सम्मिलित किया—

१. श्रीमान् महाराजाधिराज महेन्द्र यादव आर्यकुल दिवाकर महाराणाजी श्री १०८ सज्जनसिंह वर्मा धीर वीर जी. सी. एम. आई. उदयपुराधीश, सभापति

२. लाला मूलराज एम. ए. एकस्ट्रा, असिस्टेंट कमिश्नर लुधियाना निवासी लाहौर, उपसभापति

३. श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी उदयपुर, मन्त्री

४. ला० रामशरणदास रईस उपप्रधान आर्य-समाज मेरठ, मन्त्री

५. पण्डया मोहनलाल विष्णुलाल जी मथुरा निवासी उदयपुर, उपमन्त्री

६. श्रीमान् महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुरा, सभासद्

७. श्री राव तख्तसिंह जी बेदला राज (मेवाड़), सभासद्

८. श्रीमन्त राव राणा फतहसिंहजी वर्मा देलवाड़ा, सभासद्

९. श्रीमन्त रावत श्री अर्जुनसिंह जी वर्मा आसींद, सभासद्

१०. श्रीमन्त महाराजा श्री गजसिंह जी वर्मा उदयपुर, सभासद्

११. श्रीमंत राव श्री बहादुरसिंहजी वर्मा मसूदा, सभासद्

१२. रायबहादुर पं० सुन्दरलाल सुपरिन्टेन्डेन्ट वर्कशाप व प्रेस अलीगढ़, सभासद्

१३. राजा जयकृष्णदासजी सी. एस. आई. डिप्टी कलेक्टर बिजनौर, सभासद्

१४. बाबू दुर्गाप्रसादजी कोषाध्यक्ष आर्य-समाज फर्रुखाबाद, सभासद्

१५. लाला जगन्नाथप्रसादजी फर्रुखाबाद, सभासद्

१६. सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य-समाज फर्रुखाबाद, सभासद्

१७. ला० कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्य-समाज फर्रुखाबाद, सभासद्

१८. बा० छेदीलाल गुमाश्ता छावनी मुरार कानपुर, सभासद्

१९. ला० साईंदासजी मन्त्री आर्य-समाज लाहौर, सभासद्

२०. बा० माधोप्रसादजी मन्त्री आर्य-समाज दानापुर, सभासद्

२१. रायबहादुर पं० गोपालराव हरिदेशमुख बम्बई, सभासद्

२२. रायबहादुर महादेव गोविन्द रानाडे जज पूना, सभासद्

२३. पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा संस्कृत प्रोफैसर लन्दन, सभासद्

इन सभासदों में से महाराणा सज्जनसिंह जी उदयपुर, कविराज श्यामलदासजी, ला० रामशरणदास जी, श्री राव तख्तसिंह जी, श्री राव राणा फतेहसिंह जी, श्री अर्जुनसिंह जी, श्री बहादुर-सिंह जी, पं० सुन्दरलाल जी, ला० जगन्नाथप्रसाद जी, सेठ निर्भयराम जी, ला० कालीचरण जी, बाबू छेदीलाल जी, ला० साईंदास जी, पं० गोपालराव हरिदेशमुख जी का स्वर्गवास हो गया तो उनके स्थान पर उत्तरकाल में निम्न १४ महानुभावों को अधिकारी व सभासद् नियत किया गया।

१. महाराजाधिराज कर्नल सर प्रतापसिंह जी जी. सी. एस. आई. बड़े मुसाहब जोधपुर, प्रधान

२. श्री हरविलास जी शारदा जैसलमेर, (राजपूताना) उपमन्त्री

३. बेदला राव राजसिंह जी उदयपुर, सभासद्
४. कनारी राजराणा विजयसिंह जी कोटा, सभासद्
५. बा० पुरुषोत्तमनारायण जी फर्रुखाबाद, सभासद्
६ सेठ शिवलाल जी, सभासद्
७. ला० लालचन्द जी लाहौर, सभासद्
८. ला० ईश्वरदास जी लीडर, सभासद्
९. ला० हंसराज जी प्रिंसिपल, सभासद्
१०. ला० लाजपतराय जी लीडर, सभासद्
११. पं० रामदुलारे जी वाजपेयी लखनऊ, सभासद्
१२. ला० रामगोपाल जी बैरिस्टर रंगून, सभासद्
१३. श्री रोशनलाल जी बैरिस्टर इलहाबाद, सभासद्
१४. ला० पद्मचन्द जी अजमेर, सभासद्

उपरोक्त सभा की बैठक १८ दिसम्बर १८८३ को मेवाड़ दरबार की कोठी मेयो कालेज अजमेर में हुई। उसमें १३ सभासदों में १४ स्वयं और ७ के प्रतिनिधि उपस्थित थे। उस बैठक के विशेष संस्मरण, जो ला० मूलराज जी एम. ए. ने वर्णन किये—वे इस प्रकार हैं—

१. पहला—किसी सभासद् ने स्वामीजी द्वारा लिखे गये हिसाब-किताब पर आपत्ति की—तो एक राणा ने तलवार निकाल कर आपत्ति-कर्त्ता को चैलेंज किया।

२. दूसरा—स्वामी जी का केवल ६० हजार रुपये की संपत्ति वाली सभा में इतने राजों—महाराजों को सम्मिलित करने का एक मात्र उद्देश्य उनको एक स्थान पर मिल बैठ विचार-विनिमय करने और देश-सुधार के लिये प्रोत्साहित करना था।

सन् १८५७ की क्रान्ति के विफल हो जाने के बाद महर्षि की यह दृढ़ धारणा बन गई थी कि जब तक देशी नरेशों में राष्ट्र-भक्ति और राष्ट्र-सुधार की भावना पैदा नहीं होती, तब तक देश का कल्याण नहीं हो सकता और इसी लिये उन्होंने जीवन के अन्तिम वर्ष देशी नरेशों को राज-धर्म, राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्र-सुधार सिखाने में लगाये और इसी कार्य का करते-करते सन् १८८३ में महानिर्वाण पद को प्राप्त हुये।

●

दशम परिच्छेद

आर्य-समाज की राजनीतिक अग्नि-परीक्षायें

१. पटियाला राजद्रोह षड्यन्त्र अभियोग

सन् १८७३ में स्वामी दयानन्द की कलकत्ता में तत्कालीन वायसराय से हुई निर्भीक बात-चीत से अंग्रेज सरकार इतनी चिढ़ गई थी कि १८८३ अर्थात् स्वामी जी के मरण पर्यन्त उनके पीछे गुप्तचर लगे रहे और उनकी गतिविधियों की समस्त जानकारी सरकार को देते रहे। केवल इतना ही नहीं, जो व्यक्ति भी उनके सम्पर्क में आया, वह भी सरकार का विरोधी समझा जाने लगा। ज्यों-ज्यों स्वामी जी के विचार फैलते गये और दूसरे राजनीतिक नेता उन्हें समझते गये, वे स्वामी जी की ओर आकर्षित होते गये। स्वामी जी के बढ़ते प्रभाव से अंग्रेज शासक बड़े परेशान रहने लगे और उनके विरुद्ध कई तरह के प्रपञ्च रचे गये, जिससे उनका प्रभाव कम हो जाय। आर्य-समाज और उसके प्रवर्तक के सम्बन्ध में सरकार का व्यवहार कड़े से कड़ा होने लगा।

पंजाब में उस समय लाला लाजपतराय आर्य-समाज के नेता थे। वह राजनीति में भी बढ़ चढ़कर भाग लेते थे। अंग्रेज सरकार ने सर्व-प्रथम १९०७ में लालाजी व उनके कई साथियों, जैसे श्री अजीतसिंह आदि को उनकी राजनीतिक गतिविधियों के कारण देश से बाहर नजरबन्द कर दिया। प्रमुख आर्यों के इस तरह निर्वासित किये जाने से आर्य-जगत् विक्षुब्ध हो उठा और अनेक आर्यों ने राजनीति में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया। स्वामीजी के परम श्रद्धालु भक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा, जिनको पहिले ही स्वामीजी ने स्वयं विदेश भेजा हुआ था, वह वहां से अंग्रेज सरकार के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे, अपने देशवासी प्रमुख आर्यों को राजनीतिक साहित्य प्रचुर मात्रा में भेजते थे। अंग्रेज सरकार द्वारा आर्य-समाज की गतिविधियों पर रोक लगाने के जितने भी प्रयत्न हुए, उतना ही

आर्य-समाज का प्रभाव बढ़ता गया। सरकार की इस परेशानी में देशी रियासत पटियाला के सिख महाराजा ने हाथ बटाया और उस ने अपनी रियासत में प्रमुख आर्य-समाजियों के विरुद्ध १७ दिसम्बर १९०९ में राजद्रोह का एक अभियोग चला दिया। कई आर्यों को जेलों में डाला गया, कईयों को रियासत से ही निकाल दिया गया, कईयों को नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया और इस तरह से आर्य जगत् को आतङ्कित करने के प्रयत्न किये गये। रियासत की तरफ से विशेष न्यायालय में उस समय के प्रमुख सरकारी वकील मि० आर्थर ग्रे पेश हुये और आर्यों की ओर से प्रसिद्ध वकील ला० मुन्शीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द)।

मि० ग्रे ने आर्यों और आर्य-समाज के विरुद्ध न्यायालय में १७ दिसम्बर को निम्न अभियोग पत्र प्रस्तुत किया—

यह सभा राजद्रोह का षड्यन्त्र कर रही है। स्थापित सरकार में अश्रद्धा पैदा करके लोगों को विद्रोह के लिये भड़काती है। माननीय न्यायाधीश से मैं प्रार्थना करूंगा कि जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष साक्षियों को मैं इस अभियोग में प्रस्तुत करूं, उन्हें ही प्रमाणित समझा जाये। जो सामग्री अभियुक्तों के घरों से बरामद हुई है। उनसे आर्य-समाजों में विद्रोहात्मक व्याख्यान दिये जाने, पुस्तकें बेची जाने, और लिखित एवं मौखिक प्रचार किये जाने के प्रमाण मिलते हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा इन एकांशों का प्रबन्ध करने वाली राजनीतिक संस्था है और परोपकारिणीसभा धार्मिक कार्य करने वाली। श्यामजी कृष्ण वर्मा पिछले दिसम्बर तक परोपकारणी सभा का सदस्य था। आर्य-समाज दूसरों को गाली-गलौज पर खड़ा किया गया एक धर्म हैं और इस कारण धारा १५३ ए के आधीन दण्डित हो सकता है।

श्री ग्रे ने भारतीय दण्ड-विधान की कई धाराओं से यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि देश में स्थापित राज्य में अश्रद्धा रखने—उसके विरुद्ध घृणा फैलाने का अभिप्राय यह है कि उसके विरुद्ध विद्रोह करके उसे अपदस्थ किया जाये। उसने सत्यार्थप्रकाश में से भी कई उद्धरण प्रस्तुत किये, जिनमें दूसरे धर्मों के चलाने वालों पर गन्दी भाषा में आक्षेप किय गये हैं। इस सम्बन्ध में कादियान से प्रकाशित एक पत्रिका भी प्रस्तुत की।

१८ दिसम्बर को अपना बयान जारी रखते हुए मि० ग्रे ने आगे कहा—

यह अभियोग बड़ा महत्त्वपूर्ण है और अपनी तरह का पहला ही है। इसे एक देशी रियासत में विशेष रूप से चलाया जा रहा है। इसके द्वारा यह सिद्ध किया जायगा कि यह कुछ व्यक्तियों द्वारा समाचार पत्रों में छपाये विद्रोही वक्तव्यों या दिये गये भाषणों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि एक विशाल संस्था के बहुत से सदस्यों द्वारा भारत भर और देशी रियासतों में सरकारों के विरुद्ध व राज-द्रोह भड़काने का षड्यन्त्र है। इस कारण इस अभियोग को साधारण न समझते हुए इसकी साक्षियों व घटी घटनाओं को बड़े ध्यान से देखना व समझना होगा। यह किसी एक व्यक्ति के विरुद्ध चलाये गये अभियोग से कहीं अधिक कठिन है। इस अभियोग में सरकार का यह कहना है कि एक सभा या संस्था केवल सरकार के विरुद्ध विद्रोहा-त्मक प्रचार के लिये ही स्थापित की गई है और उसकी तत्सम्बन्धी सब चर्चा बन्द कमरे में होती हैं और कार्य-क्रम बनते हैं। प्रत्यक्ष साक्षियां इस सम्बन्ध में या तो उन लोगों से मिल सकतीं हैं जो सभाओं में सम्मिलित होते हैं, या जो नियमित सदस्य होते हैं और या फिर गुप्तचरों से, जो इसी प्रयोजन के लिये नियुक्त हैं।

श्री ग्रे ने स्पष्ट स्वीकार किया कि ऐसी साक्षियां प्राय: संदिग्ध होती हैं। इसीलिये उसने अपने आरम्भिक बयान में यह स्पष्ट कर दिया है कि जो मार्ग वह इस अभियोग को सिद्ध करने के लिये अपना रहा है, इससे या तत्सम्बन्धी घटी घटनाओं से, जो संभवत: सीधा प्रमाण तो न हो, लेकिन सम्मिलित रूप में देखने से न्यायाधीश महोदय यह निष्कर्ष निकाल सकेंगे कि यह अभियोग ठीक और उचित है।

अपने इस कथन को सम्पुष्ट करने के लिये मि० ग्रे ने आगे कहा कि यदि "यदि कुछ आदमी प्रतिदिन राजनीतिक चर्चा करने के लिये इकट्ठे हों और उन में से एक व्यक्ति उठकर महाराजा साहब पर बम फेंक दे तो आप यह सोचने में न्याय-संगत होंगे कि बम के गिराने का कार्य बैठक में हुई चर्चा से ही सम्बन्धित है और सभा के सदस्य बम गिराने वाले के कृत्य से सहमत हैं।"

मि० ग्रे ने कहा कि "आर्यसमाज एक राजनीतिक संस्था है। जब अंग्रेजी सरकार ब्रिटिश भारत में इस समाज की गति-विधियों की जांच-पड़ताल कर रही थी और इसके प्रभाव को नष्ट करने में प्रयत्नशील थी, तो कई आर्य लोग रियासतों में चले गये। पटियाला में भी कई आर्य पहुंचे गये। यहां भी आर्यसमाज की शाखायें स्थापित की गईं और सरकारी पक्ष के अनुसार पिछले तीन-चार वर्षों में पटियाला सरकार के विरुद्ध भी अश्रद्धा और विद्रोह भड़काने के प्रयत्न किये गये।"

श्री ग्रे कह रहे थे कि "जो अपराध वह इन लोगों का न्यायालय में सिद्ध करने जा रहा है वह कार्य रूप में १९०७ में आरम्भ हुये थे, जब कि सब जानते हैं कि ब्रिटिश भारत में आर्यसमाजियों के विरुद्ध बड़े पैमाने पर राजद्रोह के अभियोग चलाये गये और उसके परिणाम स्वरूप राज्य सरकारों को बलपूर्वक हटाने के लिये राजनीतिक हत्याओं पर हत्यायें की गईं। परोपकारिणी सभा का विधान इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण है। इसके सभासद् स्वामी दयानन्द ने स्वयं मनोनीत किये थे। उनमें से श्यामजी कृष्ण वर्मा, जो पिछले दिसम्बर तक सभा के सभासद् थे, के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। यही वह व्यक्ति है जो सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी है और जिसने पेरिस से सर विलियम की राजनीतिक हत्या की प्रशंसा की है।

मैं इसी प्रकार के सैकड़ों उदाहरण व अंश प्रस्तुत कर सकता हूं, परन्तु मैंने उन्हीं का चयन किया है जो मेरे लिये नितान्त आवश्यक हैं। मैं इनको तिलक और विपिनचन्द्र पाल के राजनीतिक व विद्रोहात्मक भाषणों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूं।

"उसने (दयानन्द ने) अपने अनुयायियों को ईश्वर से यही प्रार्थना करना सिखाया है कि उन पर कोई विदेशी शासन न कर सके।"

"भारत सरकार ने यह आवश्यक समझा कि लाला लाजपतराय व उनके कुछ एक साथियों को उनके खतरनाक राजनीतिक प्रभाव के कारण कुछ समय के लिये देश से बाहर नजरबन्द कर दिया जाय।"

"आर्य-समाज के पिछले वार्षिकोत्सव पर चल रहे राजनीतिक अभियोगों के लिये धन की अपील की गई और लाला लाजपतराय को अपना नेता घोषित किया गया"

"उसके (दयानन्द के) अनुयायी बड़े खतरनाक हैं।"

उन दिनों आर्य समाजियों पर हुये अत्याचारों का विवरण

—डा० बखतावर इसलिये गिरफ्तार किये गये, क्योंकि उन्होंने भवानीपुर में आर्य-समाज स्थापित की थी, और तलाशी के समय उनके घर से राजनीतिक साहित्य प्राप्त हुआ था।

—श्री उमरावचन्द इस लिये गिरफ्तार किये गये कि वह श्री रामदास के व्याख्यान में सम्मिलित हुये थे और वह 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र के ग्राहक थे।

—करनाल के एक जैलदार की डायरी में एक आफीसर लिख गया कि यह व्यक्ति आर्य-समाजी है, इस लिये इसका ध्यान रखा जाय। उसको जो भी आफीसर आकर देखता, वह क्रोध में भर जाता और उसे तंग करता।

—आर्य-समाज के मन्त्रियों को आज्ञा दी जाती थी कि वह अपने सब सदस्यों के नाम सरकार को भेजें।

—सुपरिटेन्डेन्ट पुलिस ने सब गिरफ्तारियां बिना वारंट के कर लीं और जो कुछ भी अभियुक्तों के घर से ले गये, उसकी कोई सूची न बनाई और न अभियुक्तों को दी।

—रेलवे स्टेशनों और तार घरों पर पहरा लगा दिया गया कि समाचार बाहर न भेजें जायें और न सम्बन्धियों को सूचनायें ही दी जा सकें। अनगिनत व्यक्ति केवल इस लिये गिरफ्तार किये गये कि वे अपने सम्बन्धियों को तार देने आये। उन्हें दिन-दिन भर और रात-रात भर पुलिस थानों में बिना अन्न जल के रखा गया।

—एक व्यक्ति को उस समय गिरफ्तार किया गया, जब वह अपने मां की बीमारी के कारण परेशान था। उसे तीन दिन तक हवालात में रखा गया और छः दिन के बाद पटियाला जेल भेजा गया।

—आर्य-समाज मन्दिरों को तोड़ा-फोड़ा गया।

—जिन सरकारी कर्मचारियों को नौकरी पर बुलाया जाता सुपरिन्टेन्डेन्ट उन्हें आज्ञा देने से इन्कार कर देता।

—आर्य-समाजों पर दिन रात पुलिस का पहरा रहता।

—जेल में एक दिन सांप निकल आया। मुसलमान अधिकारी से शिकायत की गई, परन्तु उसने कहा कि काले सांप काले आदमियों को नहीं काटते।

—गुलाबचन्द को सिख रजीमेंट से अंग्रेज मेजर ने इस लिये निकाल दिया क्योंकि वह आर्य-समाज का सदस्य था और ऐसी सभा के सदस्य को सिख रेजीमेंट में रखना उचित नहीं था।

—इन्सपेक्टर जेनरल पुलिस इन्दौर ने लक्ष्मणराव को नोटिस दिया कि वह आर्य-समाज के उत्सव में नहीं जा सकता, यदि वह सम्मिलित होगा तो नौकरी से निकाल दिया जायगा। लक्ष्मणराव ने नौकरी छोड़ दी और आर्य-समाज के उत्सव में सम्मिलित हो गया।

—चीफ मैडीकल आफीसर को एक कर्मचारी ने यह पत्र लिख कर नौकरी छोड़ दी कि वह आर्य-समाज रूपी मां से सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता।

—पंजाब ब्रिगेड के अधिकारी ने निम्न आज्ञा जारी की कि आर्य-समाज या किसी अन्य राजनीतिक संस्था में कोई सम्मिलत नहीं हो सकता।

—जिला रोहतक में १३ जून १९१० को ढिंढौरा पीटा गया कि आर्य-समाज से सम्बन्धित सब पुस्तकें सरकार ने जब्त कर ली हैं। जिला अधिकारी ने उत्तर दिया कि मुझे इसका कुछ पता नहीं है।

—मेजर सी. जे. कम्बरलाग सेक्रेटरी छावनी कमेटी मुलतान ने २७—४—१९०७ को अमरनाथ मन्त्री आर्य-समाज को उत्तर दिया—'आर्य समाज विशुद्ध धार्मिक संस्था नहीं है, इस लिये उसे मन्दिरों, मसजिदों, गिरजाघरों की श्रेणी में रख कर करों से मुक्त नहीं किया जा सकता।

—जिला अधिकारी शाहजहांपुर ने ११-३-१९०९ में इन्द्रजीत के छुट्टी के लिये प्रार्थना पत्र पर निम्न आज्ञा दी—"यदि वह आर्य-समाज का काम करेगा । तो उसके विरुद्ध कार्यवाही की जायगी ।" इन्द्रजीत ने तुरन्त अपना त्याग पत्र इन शब्दों के साथ भेज दिया कि मैं आर्य-समाज को नहीं छोड़ सकता ।

—ठीक उसी दिन, जब वायसराय लार्ड मिन्टो अंग्रेज शहंशाह की तरफ से जोधपुर में यह भाषण दे रहे थे कि हमारे राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विश्वास के अनुसार धर्म के प्रचार व प्रसार के अधिकार हैं, जोधपुर पुलिस आर्य-समाज मन्दिर के नाम पट्ट और ओ३म् ध्वज उतार रही थी, क्योंकि वह वायसराय महोदय के मार्ग में पड़ते थे ।

आर्य-समाज सम्बन्धी उन दिनों की सम्मतियां

सर डेन्जिल इबटसन (गवर्नर पंजाब) ने १९०७ में कहा था कि—"उसकी सूचना के अनुसार जहां-जहां भी आर्य-समाज है, वहां-वहां ही बेचैनी है ।"

"Indian Political Thought from Ranade to Bhave" by Dr. Mackenzie Brown, University of California Press, Barkley & Los Angelcs U.S.A. 1961 A.D. Page 104

"हंस कोहन के अनुसार, आर्य-समाज आन्दोलन धार्मिक व राष्ट्रोत्थान के लिये था । यह भारत और हिन्दुओं में नवजीवन लाना चाहता था ।"

("Indian National Movement & Thought") by D.V.P.S. Raghuvanshi. Page 28

"ऐंगलो इण्डियन आफीसर इसको राजनीतिक संस्था समझते थे जो धोखे से अपने उद्देश्यों का प्रचार करती है ।"

(The Awakening of India by Macdonald. Page 35-36)

"हिन्दी भाषा में स्वामी दयानन्द प्रथम शक्तिशाली गद्य लेखक थे । उन्हों ने धार्मिक मदान्धता और बढ़ी चढ़ी कुरीतियों के विरुद्ध घोर युद्ध किया । पृष्ठ ११८"*

*Freedom Struggle in India (1858—1909) by M. M. Ahluwalia Ph. D. University of Delhi. Page 218

"दयानन्द के अनुयायी ऊंची श्रेणी के देश-भक्त थे लेकिन हिन्दू-हितों का भी ध्यान रखते थे। वह मुसलमान व ईसाई बने लोगों को वापस हिन्दू धर्म में लाना चाहते थे।"

Ramsay Muirs "Awakening of India." Page 37

"आर्य-समाज पूर्णतया एक राष्ट्रीय संस्था है। यह इतनी संगठित और सुलझी हुई संस्था है जो सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन में अग्रसर है—ईसाईयत इसे अपना सबसे बड़ा शत्रु समझती है।"

"India : Its Life and Thought" by John.P. Jones. Pages 404-408

उपरोक्त सब विवरण "The Arya Samaj & its Detractors : A Vindication" by Munshi Ram Jijyasu Governor Gurukula Hardwar & Rana Deva Editor the Vedic Magazine printed & published by Pt. Anant Ram Sharma Manager Sad-Dharma Pracharak Press Gurukula Kangri से लिये गये हैं।

हैदराबाद सत्याग्रह

वह अंग्रेज सरकार ही क्या, जो एक बार हार कर चुप चाप बैठ जाती। उसका ब्रिटिश भारत में तो आर्य-समाज पर सीधा प्रहार करने का साहस न हुआ, यद्यपि परोक्ष रूप में वह आर्यों के प्रति सदा ही भयभीत रही और उन्हें हतोत्साह करने के लिये विविध प्रकार के प्रपञ्च रचती रही। पहले उसने पटियाला के सिख महाराजा को आगे करके आर्य-समाज पर प्रहार किया और फिर हैदराबाद के मुस्लिम नवाब को यही कार्य करने के लिये उकसाया। निजाम हैदराबाद की मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़का कर आर्य-समाज पर अत्याचार कराने आरम्भ कर दिये। हैदराबाद रियासत में आर्य-समाज पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये, मन्दिरों को गिराया गया, यज्ञ पर प्रति बन्ध लगे, आर्यों को मारा पीटा जाने लगा, आर्य-समाज मन्दिरों की ओर जाते हुये आर्यों की हत्यायें कराई गई।

हैदराबाद रियासत में हिन्दुओं की बहु संख्या थी और उनमें आर्य-समाज ही सबसे प्रभावशाली संस्था थी। यदि वहां कांग्रेस के

आन्दोलन होते तो भी आर्य-समाजी ही आगे-आगे होते और यदि कोई हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न होता तो भी आर्य-समाजी ही प्रमुख भाग लेते। आर्य-समाज के बढ़ते प्रभाव से निजाम राज्य में एक हलचल-सी मची हुई थी। मुस्लिम निजाम अंग्रेज की सलाह पर आर्यों पर अत्याचार करने पर उतारू हो गया और १९३१ से लेकर १९३६ तक उसने आर्य-समाज सम्बन्धी कई फर्मान जारी करके उन्हें कष्ट दिये। मन्दिरों के निर्माण रोके गये, वार्षिकोत्सवों पर रोक लगाई गई, बाहर से आने वाले आर्य उपदेशकों और विद्वानों की जबान-बन्दी करके उन्हें रियासत से निकाला गया, उन्मादी मुसलमानों द्वारा की गई आर्यों की हत्याओं के अभियोग दबा दिये गये। संक्षेप में आर्य-समाज की समस्त गति-विधियों को रोकने के लिये प्रयत्न किये गये। आर्य लोग यह सब अत्याचार सहन करते रहे। इन समाचारों के छपने का सारे देश पर भी प्रभाव होता रहा और आर्य जगत् में बेचैनी बढ़ने लगी।

आखिर हैदराबाद की आर्य जनता का १९३६ में धैर्य का बांध टूटा और वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिये अग्नि-परीक्षा में उत्तर पड़ी। सत्याग्रह समितियां बन गईं और युद्ध आरम्भ हो गया। श्री देवीलालजी और महाशय श्री रामजी के नेतृत्व में सहस्रों आर्यों ने सत्याग्रह शुरू कर दिया। वहां के प्रमुख आर्य नेता पं० नरेन्द्र को भी निजाम सरकार ने जेल में डाल दिया और इस तरह से हैदराबाद सरकार का दमन-चक्र चलने लगा।

हैदराबाद के आर्यों के जीवन-मरण-संघर्ष के समाचार जब पत्रों में छपे तो सारे देश के आर्य लोग तड़प उठे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने देशव्यापी आन्दोलन का बिगुल बजा दिया। निजामशाही को चेतावनी दी गई कि वह आर्यों पर चल रहे दमन चक्र को रोके, अन्यथा सारे देश की आर्य जनता हैदराबाद पर चढ़ दौड़ेगी, परन्तु अंग्रेज सरकार की शह से बिगड़े दिमाग निजाम पर इस चेतावनी का कोई प्रभाव न हुआ। सार्वदेशिक सभा की ओर से महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज इस युद्ध के प्रथम सर्वाधिकारी नियत किये गये। देश भर की आर्य-समाजों को आदेश दिये गये कि वह इस युद्ध के लिये तैयार हो जायें, धन और जन संग्रह करना शुरू कर दें। आर्य जगत् भी निजाम की इस चुनौती

का मुंह तोड़ उत्तर देने के लिये जी-जान से जुट गया। शहर-शहर में उत्साह और जोश का समुद्र उमड़ पड़ा। सहस्रों रुपये एकत्र हुये और सहस्रों ने अपना नाम सत्याग्रह के लिये दे दिया। महात्मा नारायण स्वामीजी बम्बई प्रान्त के हैदराबाद रियासत के साथ लगते नगर शोलापुर में जा विराजे और वहां एक विशाल कैम्प का निर्माण कर लिया, जिस में सहस्रों सत्याग्रही ठहराये जा सकें। समाचार पत्रों और गश्ती पत्रों द्वारा निर्देश स्थान-स्थान पर पहुंचने लगे। सारे देश में एक हलचल सी मच गई। आर्य वीरों के उत्साह और जोश का ठिकाना न रहा। सर्वाधिकारी की आज्ञा मिलते ही स्थान-स्थान से जत्थे हैदराबाद के लिये चल पड़े। सार्वदेशिक का युद्ध के लिये आह्वान और महात्मा नारायण स्वामीजी का रियासत की सीमा पर मोर्चा, रियासत में चल रहे सत्याग्रह में एक प्रबल योगदान सिद्ध हुआ और निजाम-शाही इस युद्ध का मुकाबला करने के लिये दलबल से तैयार हो गई। महात्मा जी ने सहस्रों स्वयं-सेवक साथ लेकर जब रियासत में प्रवेश किया तो निजाम राज्य में एक भूकम्प सा आ गया। ऋषि दयानन्द के दीवाने सिर हथेली पर रखकर जब रण में उतरे, उस समय का जोश देखते ही बनता था। रियासती फौज ने सब को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया। महात्मा जी के जत्थे की गिरफ्तारी के बाद कुंवर चांद-करण जी शारदा सर्वाधिकारी नियत हुये और उन्हों ने भी भारी जत्थे के साथ सत्याग्रह किया, एवं गिरफ्तार हुये। तीसरे सर्वाधि-कारी 'मिलाप' लाहौर के सम्पादक श्री खुशहालचन्द जी (वर्त्तमान में—श्री आनन्द स्वामी जी) तो लाहौर से ही एक बड़ा जत्था लेकर गये थे। उनके सत्याग्रह कर जेल जाने के समय निजाम का दिमाग कुछ-कुछ सुधरने लगा।

सहस्रों सत्याग्रही निजाम-शाही की जेलों को भर रहे थे। चौथे सर्वाधिकारी राजगुरु धुरेन्द्र जी शास्त्री बने और वह भी सहस्रों स्वयंसेवकों के साथ सत्याग्रह करके हैदराबाद की जेल में पहुंच गये। पांचवे सर्वाधिकारी पं० वेदव्रतजी वानप्रस्थी और छठे सर्वाधिकारी प्रताप लाहौर के सम्पादक महाशय कृष्ण जी बनाये गये। सातवें सर्वाधिकारी श्री ज्ञानेन्द्रजी सिद्धान्त-भूषण एवं आठवें सर्वाधिकारी हैदराबाद के पं० विनायकराव विद्यालंकार बने।

इस तरह से देश भर में आर्यों के उमड़ते उत्साह और जोश ने हैदराबाद के निजाम के दिमाग ठिकाने लगा दिये। जेलों में सत्याग्राहियों के लिये स्थान न रहा। खाने-पीने का सामान जुटाने में भी निजाम सरकार परेशान हो उठी। सारे देश का वातावरण सत्याग्रह की धूम से गूंज उठा। महात्मा गांधी से लेकर देश के सारे नेता सत्याग्रह को आशीर्वाद देने लगे। निजाम साहब को लाचार होकर राजसी अकड़ छोड़नी पड़ी। उनके सारे प्रपंच शिथिल हो गये। सत्याग्रह की आन्धी के आगे उनकी कोई राजनीति सफल न हो सकी और अन्त में १७ जुलाई १९३९ को उन्होंने घुटने टेक दिये। आर्य-समाज की सब मांगे स्वीकार कर ली गई। रियासत भर में आर्य-समाज के प्रचार व प्रसार पर से सब प्रतिबन्ध उठा दिये गये और इस तरह से आर्य-नेताओं से एक समझौता संपन्न कर लिया।

जेलों के अत्याचारों को सहर्ष सहन करते हुये आर्य वीर जब "वैदिक धर्म की जय" बुलाते हुये लौटे तो मानों आकाश मण्डल आर्य-समाज की इस विजय पर गूंज उठा।[1]

हैदराबाद सत्याग्रह के आर्य शहीद

पं० श्यामलाल जी (हैदराबाद), स्वामी सत्यानन्द जी (उत्तर प्रदेश), श्री परमानन्द जी (हरिद्वार), श्री विष्णु भगवन्त जी तन्दुर कर (हैदराबाद), श्री छोटेलाल जी (उ, प्र), श्री नानुमल जी (मध्यप्रदेश), श्री माधवराव जी (हैदराबाद), श्री पांडुरंग जी (हैदराबाद), श्री सुनहरासिंह जी (रोहतक), महाशय फकीरचन्द जी (करनाल), श्री मलखानसिंह जी (रुड़की), स्वामी कल्याणानन्द जी (मुजफ्फरनगर), श्री शान्तिप्रकाश जी (गुरदासपुर), श्री बदनसिंह जी (सहारनपुर), श्री ताराचन्द जी (मेरठ), श्री अशरफीप्रसाद जी (चम्पारण), ब्रह्मचारी रामनाथ जी (अहमदाबाद), श्री सदाशिवराव पाठक (शोलापुर), श्री गोविन्दराव जी (बीदर), श्री मातुराम जी (हिसार), श्री व्यंकटराव जी कधार,

---

१. उपरोक्त सब सामग्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति की पुस्तक "आर्य-समाज का इतिहास" द्वितीय भाग से ली गई है।

श्री महादेव जी, श्री रतीराम जी, श्री अरोड़ामल जी, श्री पुरुषोत्तम जी ज्ञानी।

३. सिंध में सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध

हैदराबाद सत्याग्रह में आर्य-समाज की सफलता पर मुस्लिम जगत् में एक खलबली सी मच गई थी। मुसलमान समाचर पत्र बौखला उठे और सत्यार्थप्रकाश पर फिर प्रतिबन्ध लगाने का प्रचार करने लगे। २३ जून १९४३ को जब कि सिंध प्रांत में मुस्लिम लीगी सरकार का बोल-बाला था, उसने सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा कर दी। समाचार का छपना था कि आर्य जगत् फिर चौंक उठा। स्थान-स्थान से सिंध सरकार के पास विरोध पत्र पहुंचे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने चेतावनी रूप तारें दीं तो सिंध सरकार ने ८ जुलाई १९४३ को एक विज्ञप्ति प्रकाशित करा दी कि सिंध सरकार का सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध कोई कार्यवाही करने का विचार नहीं है।

परन्तु इतने पर ही बस नहीं। दिसम्बर १९४३ में आल-इण्डिया मुस्लिम लीग ने कराची के अपने अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत करके केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों से मांग की कि वह सत्यार्थप्रकाश के कुछ भागों पर प्रतिबन्ध लगाये। आर्य प्रतिनिधि सभा सिंध और सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा ने इसे नये युद्ध की भूमिका समझा। जहां सिंध सभा ने सिंधी भाषा में सत्यार्थप्रकाश छाप के सिंध के हिन्दुओं में बड़े पैमाने पर बांटा, वहां सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने दिल्ली में आर्य महासम्मेलन करके केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को चेतावनी दी कि यदि ऐसा कोई पग उठाया गया तो आर्य-समाज पूरी शक्ति से उसका विरोध करेगा।

सिन्ध सरकार की वासी कड़ी में फिर उबाल आया और उसने २६ अक्टूबर १९४४ को फिर एक घोषणा पत्र द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश के १४ वें समुल्लास पर प्रतिबन्ध लगा दिया। आर्य-समाज फिर बेचैन हो उठा। लाहौर में आर्य सम्मेलन हुआ और चेतावनी दी गई कि सिंध सरकार का प्रतिबन्ध सहन न होगा। इस चेतावनी के फलस्वरूप सिंध सरकार १० अक्टूबर १९४६ तक तो शान्त

रही, लेकिन उसने एक बार फिर १४ वें समुल्लास पर प्रतिबन्ध की घोषणा कर दी। बस फिर क्या था, युद्ध का बिगुल बज गया। सैकड़ों आर्यवीर गले में सत्यार्थप्रकाश की प्रति डालकर बाजारों में घूमने लगे। आर्य नेता कराची में पहुंच गये। महात्मा नारायण स्वामीजी, श्री खुशहालचन्दजी, कुंवर चांदकरण जी शारदा और राजगुरु धुरेन्द्रजी ने शान्तिमय संग्राम आरम्भ कर दिया।

सिंध सरकार जो बड़ी तेजी से जहाद के मार्ग पर चल रही थी, उसने पांच दिनों में ही हथियार डाल दिये और घोषणा कर दी कि सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। पुलिस कोई कार्यवाही न करे।

---

१. उपरोक्त विवरण भी पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति की पुस्तक "आर्य समाज का इतिहास" द्वितीय भाग में लिया गया है।

एकादश परिच्छेद

उपसंहार

पाठक वृन्द ! पिछले परिच्छेदों में आपने सन् १८५७ से १८८३ तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की राजनीतिक गति-विधियों की एक संक्षिप्त सी झलक देख ली है। महर्षि ने जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में मदान्धता, गुरुडम और पाखण्ड को दूर कर वेदों के पवित्र ज्ञान के पुनरुद्धार के लिये सिर तोड़ यत्न किया। मान-अपमान विरोध और ईंटो-पत्थरों, यहां तक कि विष दिये जाने की परवाह तक न की, अपने आदित्य ब्रह्मचर्य से तपाये शारीरिक बल, तेरह वर्षों तक तप-साधना और विद्याध्ययन से तपाये बौद्धिक बल एवं योग-साधनाओं द्वारा तपाये आत्मिक बल से लंगोट-बन्द संन्यासी ने जिस वीरता, निर्भयता और निःस्वार्थता से देश के कल्याणार्थ सत्य का प्रकाश किया, वह तो चहुं ओर मुखरित है ही। साथ ही साथ उन्होंने समाज-सुधार के क्षेत्र में स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार, शुद्धि-करण से देशवासियों की उन्नति व संघठन के लिये जो सतत् प्रयत्न किये, वह भी सर्व विदित है। वैसे ही उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में भी स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग, एक भाषा, अछूतोद्धार, मनुस्मृति के आधार पर शासन-प्रणाली में सुधार, राष्ट्रियता की भावनायें देश-वासियों में पैदा करने, भारतीयता की भित्ति पर एकीकरण, पंचा-यत शासन-प्रणाली, मदिरा-पान बन्दी, हस्तकौशल इत्यादि-इत्यादि के सम्बन्ध में निर्बाध गति से प्रचार किया।

अखिल भारतीय कांग्रेस नामी संस्था का जन्म १८८४ में हुआ अर्थात् स्वामी दयानन्द के निर्वाण के भी एक वर्ष पश्चात्। इस संस्था का जन्म-दाता था एक अंग्रेज मिस्टर ह्यूम, जिसने अंग्रेज सरकार के इशारे से ही भारत भर में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध फैली उग्र विचार-धारा को शान्त करने अथवा संस्था के समागमों में अपने

मनोद्वेग हलके करने का एक षड्यन्त्र रूप खड़ा किया था। देश में सरकार के विरुद्ध विचार-प्रवाह कहीं एक दिन में ही तो पैदा नहीं हो गया था। अंग्रेज सरकार आरम्भ से ही स्वामी दयानन्द की गति-विधियों से परिचित थी और वह उन्हें सरकार का शत्रु नम्बर एक समझती थी। सरकार ने महर्षि को राजों महाराजों द्वारा और फिर कलकत्ता में स्वयं वायसराय महोदय ने प्रलोभनों में जकड़ने के प्रयत्न किये, परन्तु निर्भीक संन्यासी किसी के बन्धन में न आए और जो देशोद्धार का मार्ग वह अपने लिये निश्चित कर चुके थे, उसी पर विघ्न-बाधाओं को पैरों तले रौंदते हुए अपने विचारों का प्रचार करते रहे।

स्वामी दयानन्द अपने पूज्य गुरु विरजानन्द जी से (जिनकी राष्ट्र-भक्ति का परिचय पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है) दीक्षित होकर १८६३ में कार्य क्षेत्र में उतरे। १८८३ तक वह जो कुछ भी करते रहे, राष्ट्रोन्नति के लिये उन्होंने देशवासियों में जिन विचारों का प्रचार किया, उसी के परिणाम स्वरूप एक अंग्रेज द्वारा सरकार के इशारे से कांग्रेस संस्था का जन्म हुआ। कांग्रेस के एक प्रधान डा० पट्टाभि सीतारामय्या ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि देश में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जो भावनायें भड़की हुई थीं, उनका मूल स्रोत स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। लोकमान्य तिलक और अन्य कांग्रेसी-नेताओं ने भी स्वीकार किया कि स्वराज्य शब्द के प्रथम उद्घोषक स्वामी दयानन्द ही थे।

यह भी एक अकाट्य सत्य है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती की राष्ट्रिय विचार-धारा से प्रभावित उनके अनुयायी सदा सर्वदा ही राष्ट्रिय-आन्दोलनों में प्रमुख भाग लेते रहे। अंग्रेज सरकार भी प्रत्येक आर्य-समाजी को राजद्रोही समझती रही और उन पर येन-केन-प्रकार से कड़े अत्याचार होते रहे। सन् १८९० से १९१० तक प्रमुखतया आर्य-समाजी ही सारे राष्ट्रिय आन्दोलनों के सूत्रधार रहे। १९०४ से १९१० तक कांग्रेस के समर्थकों की गिनती सरकार समर्थकों में होती रही। यह समय वह था जब अंग्रेज सरकार के विरुद्ध कुछ कहना तो दूर रहा, स्वराज्य का नाम तक लेना अपराध समझा जाता था—नर्मदलीय कांग्रेस के अधिवेशनों में केवल प्रस्ताव ही स्वीकार किये जाते थे—परन्तु सक्रिय कार्य से कांग्रेस प्रायः

निश्चेष्ट-सी थी। इसके विपरीत अंग्रेज लेखकों और सरकार के अनुसार राष्ट्रिय-आन्दोलन केवल उन्हीं क्षेत्रों में सक्रिय थे, जहां आर्य-समाज की शक्ति अधिक थी। इतिहास लेखकों के विचार भी इस संबंध में आप पीछे पढ़ चुके होंगे, जो हमारे उक्त कथन को सम्पुष्ट करते हैं। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का अवतरण १९१८ में हुआ और १९१९ में वह कांग्रेस के सर्वेसर्वा बन गये। जो भी रचनात्मक कार्य-क्रम उन्होंने कांग्रेस के सम्मुख रखा, आप स्वामी जी के राजनीतिक कार्य-क्रम से मिलाकर देख लीजिये। उसमें आप को कोई अन्तर नजर नहीं आएगा। हमें कहना पड़ता है कि महात्मा गांधी ने भी वहीं कुछ देश को समझाने का यत्न किया, जिसके लिये महर्षि बीस वर्षों तक प्रयत्न शील रहे। यदि यह कहा जाए कि महात्मा गांधी ने उन विचारों के आधार पर ही अपने आन्दोलनों की नींव रखी तो कुछ गलत न होगा।

स्वदेशी-प्रचार

सर्वप्रथम कांग्रेस कार्य-क्रम स्वदेशी आन्दोलन बंग-विच्छेद से शुरू होता है। स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि स्वामीजी भारतवासियों को स्वदेशी वस्त्रों और वस्तुओं के प्रयोग करने का उपदेश करते रहे। लेखरामकृत ऋषि-जीवन में आप कई ऐसे व्याख्यानों का वर्णन पढ़ेंगे, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि महर्षि इस सम्बन्ध में जोरदार प्रचार करते रहे हैं। एक आर्यसमाजी के लिये उन्होंने जिस संहिता का निर्माण किया था, उसी से आप के स्वदेशी प्रेम की स्पष्ट झलक मिलती है। वह आर्य-समाजियों को एक आदर्श भारतीय बनाने और स्वदेशी वस्तुओं के ही प्रयोग की निरन्तर शिक्षा देते रहे हैं। उनके यह विचार पढ़ने योग्य हैं—"जो मनुष्य परोपकार और देशोपकार करने के योग्य नहीं, वह कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते और कोई आदमी धार्मिक नहीं हो सकता, जब तक वह देश के उपकार को अपना प्रथम कर्त्तव्य न समझता हो।

दलितोद्धार

इस क्षेत्र में तो स्वामी दयानन्द की गति-विधियां इतनी व्यापक हैं, कि यदि उनका जीवन कुछ लम्बा हो सकता तो यह

समस्या ही न रहती, बल्कि दलित कहे जाने वाला वर्ग सवर्ण हिन्दुओं में पूर्णतया खप चुका होता। महात्मा गांधी के हरिजन-सुधार आन्दोलन और महर्षि के दलितोद्धार आन्दोलन में मूलभूत दो अन्तर स्पष्ट विद्यमान हैं। पहला यह कि महर्षि मनुष्य की जाति—वर्ण जन्म से नहीं मानते, वह तो कर्म से ही किसी की जाति और वर्ण को वेदानुकूल मानते थे और दूसरा अन्तर यह था कि स्वामीजी यज्ञ कराके, प्रत्येक दलित बन्धु को यज्ञोपवीत कराके विशाल हिन्दु जाति का अंग बनाने के समर्थक थे। वह उन्हें पृथक् वर्ग के रूप में नहीं देखना चाहते थे। इसके विपरीत महात्मा गांधी जन्म से हरिजन को उसी वर्ग में बनाये रख कर विशेष अधिकार देकर उन्हें सन्तुष्ट करते थे। और अब उन्हें संविधान में विशेष अधिकार देकर कांग्रेस ने स्थायी रूप से उनको पृथक् वर्ग बना दिया है। राजनीतिक सत्ता के लोभ से अब हरिजन, हरिजन ही बना रहना चाहता है। कांग्रेस ने गांधीजी के नेतृत्व में इस कार्य-क्रम को अपनाया तो सही, परन्तु उलटे मार्ग से। परिणाम आज देशवासियों के सामने है।

स्वामी दयानन्द के निर्वाण के पश्चात् आर्य समाज ने दलित वर्ग के सुधार और उत्थान के लिये अनेक संस्थायें स्थापित कीं—पंजाब के दयानन्द साल्वेशन मिशन, आर्य स्वराज्य सभा, आर्य मेघ सभा और अखिल भारतीय दलितोद्धार सभा, इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कोई प्रान्त ऐसा नहीं था जहां दलितों के उद्धार के लिये आर्य लोगों ने संस्थायें स्थापित करके उन्हें विशाल हिन्दु जाति का अंग बनाने के प्रयत्न न किये हों। ऐसे सैंकड़ों उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। जिनसे भली-भांति यह ज्ञात हो जाय कि आर्य-समाज ने पिछले वर्ग के लोगों को पढ़ा लिखा कर ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुंचाया, उनके विवाह सवर्ण हिन्दुओं के घरों में हुये, इसी वर्ग की लड़कियां योग्य बनकर सवर्ण घरों की शोभा बनीं। खान-पान के सम्बन्ध में अनेक सहभोज होते रहे, जिनमें दलित कहे जाने वाले लोग खाना परोसते और सवर्ण हिन्दु प्रेम से खाते। मन्दिरों और कुओं के पट उनके लिये खोले जाते रहे। **स्त्री-शूद्रौ नाधीयाताम्**—के सिद्धान्त का महर्षि ने भरसक खण्डन किया और आर्य-समाज की कृपा से यह वर्ग आज सर्व-गुण सम्पन्न हो चुका है। महात्मा गांधी ने अंग्रेज सरकार की कुटिल नीति, जिस

के द्वारा वह दलितों को हिन्दुओं से पृथक् करने का षड्यन्त्र रच रहे थे --का मरण-व्रत रख कर निराकरण अवश्य किया, लेकिन यदि वह महर्षि द्वारा बताये मार्ग पर चल कर एक दम उनके हिन्दुकरण का सिंहनाद कर देते तो आज विशेषाधिकारों की आवश्यकता न रहती। कुटिल अंग्रेज की फूट डालने की मनोवृत्ति को स्वामी दयानन्द ने खूब समझ लिया था, इस लिये वह इन्हें पूर्णतया अपने में खपा लेने के प्रयत्न करते रहे। अंग्रेज सरकार ने हिन्दुओं मुसलमानों में फूट बढ़ाई, हिन्दुओं-सिक्खों में मतभेद पैदा किये और अन्त में हिन्दुओं व दलित वर्ग को पृथक् करने का षड्यन्त्र किया, परन्तु उसे सफलता न मिली। पहले स्वामी दयानन्द के प्रयत्नों से और बाद में गांधीजी के प्रयत्नों से और इसी लिये हमें यह कहना पड़ता है कि महर्षि दयानन्द के कार्य-क्रम को ही गांधीजी ने ग्रहण किया और कांग्रेस ने अपने स्वार्थ के लिये उस कार्य-क्रम का ठीक निर्वाह नहीं किया। और वह पिछड़ी जाति के विद्वान्, जो आर्य समाज की कृपा से कालेजों, गुरुकुलों, कार्यालयों में उच्चाधिकार प्राप्त थे, वह भी इन विशेषाधिकारों के लोभ में पुनः अपने को पिछले वर्ग का बताने लगे, ताकि वह राजसत्ता प्राप्त कर सकें।

एक भाषा

महर्षि दयानन्द की राष्ट्रिय विचारधारा परिच्छेद में यह भी पढ़ चुके हैं कि स्वामी दयानन्द देश में एक भाषा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने आज से एक शताब्दी पूर्व अपनी दिव्य-दृष्टि से यह देख लिया था कि भारत की यदि कोई राष्ट्रभाषा हो सकती है तो केवल मात्र नागरी लिपि में हिन्दी ही हो सकती है। इसी लिये उन्होंने गुजराती होते हुये भी अपने सब ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे—हिन्दी का ही प्रयोग करते रहे, हिन्दी में ही व्याख्यान देते रहे। भारत का नामकरण वह आर्य्यावर्त करते थे और भाषा को आर्य-भाषा का नाम देते थे। स्वामी दयानन्द ने संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् होते हुये भी आर्य-भाषा को केवल इसलिये अपनाया कि यह सर्वसाधारण की भाषा थी। अंग्रेजी राजभाषा थी और उर्दू मुस्लिम-भाषा, हिन्दी का प्रचार करने का श्रेय केवल स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज को ही है, जिन्होंने अपने शिक्षणालयों में केवल हिन्दी को ही शिक्षा का माध्यम बनाया, यद्यपि राज-भाषा

अंग्रेजी भी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती थी। परिणाम सबके सामने है। आर्य-समाज द्वारा हिन्दी-प्रचार से उर्दू और दूसरी भाषाओं के पांव उखड़ने लगे और सर्वसाधारण हिन्दी की ओर प्रवृत्त हुये, अतः हिन्दी आज विरोध के होते हुये भी राज-भाषा के पद पर आसीन है।

महात्मा गांधी ने भी हिन्दी की बढ़ती प्रगति को अनुभव करके कांग्रेस के अधिवेशनों में इसका प्रयोग कराया--हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान भी बने, लेकिन कालान्तर में उन्होंने हिन्दी की बजाए हिन्दुस्तानी का इसे नाम देना शुरु कर दिया, परन्तु चूंकि नाम का नवीनीकरण केवल मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये किया जा रहा था इस लिये वह लोक प्रिय न हो सकता था और न हुआ ही। आज की कांग्रेस सरकार भी अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिये हिन्दी का विरोध कर रही हैं, लेकिन उनके प्रयत्न सफल नहीं हो सकेंगे और हिन्दी अर्थात् आर्य-भाषा का ही देश में बोलबाला होगा।

शिक्षा

स्वामी दयानन्द सरस्वती की राष्ट्रिय विचार-धारा में आप उनकी शिक्षा-नीति भी पढ़ चुके हैं। स्वामीजी प्रत्येक शिक्षालय में संस्कृत और हिन्दी द्वारा ही शिक्षा देने के पोषक थे। उन्होंने कभी यह बात छिपा कर न रखी थी कि विदेशी भाषा में अपने बच्चों को शिक्षा देने से कभी भी भारत का कल्याण नहीं हो सकता। महात्मा गांधी की कांग्रेस ने भी उसी उद्देश्य को अपनाने के प्रयास तो किये—परन्तु उसमें एक गलती कर दी और वह यह थी कि बच्चों की शिक्षा-दीक्षा उनकी प्रान्तीय भाषाओं में हो, जिसके साथ, अंग्रेजी का पठन-पाठन भी आवश्यक हो। स्वामीजी देश में शिक्षालयों द्वारा बच्चों को कला-कौशल सिखाने के भी पक्षपाती थे—गांधीजी द्वारा स्वीकृत बेसिक शिक्षा-प्रणाली में भी वही झलक दिखाई देती है। यह पृथक् बात है कि स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस शासन ने उसे स्वीकार नहीं किया और वह पुराने ढर्रे पर ही चल रही है।

स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज ने स्वामीजी के विचारों के अनुसार वह कार्य किया जिसे इतिहासकार स्वर्णाक्षरों में वर्णन

करते हैं, लेकिन गांधीजी की कांग्रेस ने स्त्री-शिक्षा में कार्य तो किया परन्तु एक बड़ा भारी दोष उस में रखा गया। जहां स्वामीजी का यह विचार था कि लड़कों और लड़कियों के शिक्षालय कम से कम दो कोस के अन्तर पर होने चाहियें, वहां गांधीजी की कांग्रेस उनकी सहशिक्षा पर बल देने लगी, जो व्यावहारिक एवं पारिवारिक दृष्टि से हानिकर है। स्वामीजी इन बुराइयों को खूब समझते थे परन्तु अंग्रेजी-शिक्षा से विभूषित गांधीजी की कांग्रेस इसमें कोई दोष नहीं देखती। स्वामीजी का शिक्षा के सम्बन्ध में मूलभूत सिद्धान्त नैतिक एवं राष्ट्रिय चरित्र था परन्तु इसके विपरीत कांग्रेस का सिद्धान्त पश्चिमी प्रभाव से परिपूर्ण जागृति थी। दोनों सिद्धान्तों के परिणाम सुगमता से समझे जा सकते हैं। देश में आज जो अनैतिकता, अभारतीयता और चरित्र-हीनता दृष्टिगोचर हो रही है। वह सब इसी कारण से है कि हमने शिक्षा-प्रणाली को भारतीयता की दृष्टि से नहीं देखा, ऋषि दयानन्द की दृष्टि से नहीं देखा। ऋषि के अनुयाइयों ने ऋषि के आदर्शों को सिर आंखों पर रखा। आर्य शिक्षालयों में पहले वही सब लक्ष्य रखे गये कि हम अपने बच्चों को सर्वांगीण भारतीयता के अनुकूल बनायेंगे, परन्तु आज सरकारी अनुदान से सब के सब शिक्षालय पथभ्रष्ट हो रहे हैं। और हमारा धनी व उच्च वर्ग अपने बच्चों को ईसाई शिक्षालयों द्वारा पढ़ा कर गौरव अनुभव करता है परन्तु देश-हित में उन्हें शून्य कर रहा है। यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार हम बच्चों को शिक्षित तो कर रहे हैं, परन्तु भारतीय नहीं बना रहे। मांस-हाड़ को सजाने वाले पुतले तो बना रहे हैं—मानव नहीं। ऋषि के सिद्धान्तों को थोड़ा बहुत मानने वाले गांधीजी भी नहीं रहे, जिनकी आवाज सुनी जाती। आज उनके नाम-लेवा शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं, प्रत्येक क्षेत्र में उनके विचारों को परे फेंक रहे हैं, लेकिन राज्य सत्ता बनाये रखने के लिये नाम उन्हीं का लेते हैं—मौखिक गुण-गान करने में कोई कोर कसर उठा नहीं रखते, कितनी विडम्बना है। सरकार आज समझे या कल, ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-प्रणाली के बिना देश का कल्याण नहीं हो सकेगा।

राष्ट्रिय-चरित्र

स्वामी दयानन्द देश में अखण्ड, एकभाषी सुराज्य के समर्थक

थे। उनकी दिव्य-दृष्टि से देश के पतन का कारण हमारी परस्पर फूट—हम में स्वार्थ मनोवृत्ति की वृद्धि, देश के सामूहिक हित-चिन्तन का अभाव और देश-भक्ति की कमी थी। महर्षि ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर भारतीयों के इन्हीं दुर्गुणों का वर्णन किया है। फूट के कारण ही भाईयों ने भाईयों के विरुद्ध युद्ध किये, और इस तरह से सारा देश मुसलमानों की दासता की बेड़ियों में जकड़ा गया। इस पिशाचिनी फूट ने ही हमें फिर अंग्रेजी का दास बनाया। महात्मा गांधी भी अपने काल में इसी प्रयत्न में लगे रहे कि किसी तरह से हम भारतवासी हिन्दु मुसलमान एक हो कर अंग्रेज से मुक्ति प्राप्त करें—हमारा देश अखण्ड रहे—और हम सब यहां भाईयों-भाईयों की तरह रहें, परन्तु हुआ इसके विपरीत। देश के टुकड़े हुये, लाखों मनुष्यों की हत्या हुई—लाखों रुपयों की सम्पत्ति नष्ट हुई और हमारी मूर्खता पर अंग्रेज चातुरी की विजय हुई। देश-विभाजन के समय वह नृशंसता, वह क्रूरता और वह सर्वनाश देखने में आया, जिसका संसार भर के इतिहास में उदाहरण नहीं मिलता। यदि ऋषि के और गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुसार देश अखंड रहता तो आज जो भारत और पाकिस्तान में शत्रुता और वैमनस्य बना हुआ है, वह नज़र न आता। परन्तु जिस देश में स्वार्थ-भावनायें जम जाती हैं, वहां ऐसे काण्ड नित्य देखने को मिलते ही हैं।

महात्मा गांधी की ही कांग्रेस सरकार ने जहां देश का पहले बंटवारा करवाया, वही सरकार आज भी देश में भाषावाद, प्रान्तवाद और जातिवाद द्वारा फूट डाल राज्य करो की नीति अपनाकर देश के बचे खुचे चित्र को भी बिगाड़ रही है। भाषा के आधार पर प्रान्त बनें और अब बोलियों के आधार पर छोटे-छोटे प्रान्त बनाए जा रहे हैं। खूब सिर-फुटव्वल हो रही है। नित्य नये आन्दोलन हो रहे हैं। पहले तो दो सम्प्रदायों या धर्मों के झगड़े के कारण देश का विभाजन हुआ था और अब एक ही धर्म के मानने वाले परस्पर मिल कर बैठना नहीं चाहते। एक-एक शहर, एक-एक गांव के लिए लड़ रहे हैं। और इन सब की जड़ में काम कर रही हैं वही पुरानी स्वार्थ की भावनायें। अमुक प्रान्त में सरकार बने तो सर्वाधिकार मुझे मिल जायें या कम-से-कम मैं भी राज्य सत्ता

में सांझीदार बन जाऊं—आज हमारी शक्ति इसी पर अपव्यय हो रही है। देश की अखण्डता, देश की एकता खतरे में दिखाई देती है। और महर्षि दयानन्द और महात्मा गान्धी देशवासियों के यह कुकृत्य देख रहे हैं।

स्वार्थ-सिद्धि—भारतवासियों की परम्परागत मनोवृत्ति को देखते हुये ही ऋषि जीवन भर देश के अखण्ड राज्य की प्रभु से प्रार्थना करते रहे और गांधीजी भी इसी सन्देश को सुनाने के लिये नित्य प्रार्थना-सभाओं में उपदेश करते रहे, परन्तु कहना न होगा कि दोनों की प्रार्थनायें विफल हुईं और अब हम उस छोर पर परस्पर-संघर्ष से पहुंच गये हैं, जहां से आगे या तो सर्वनाश दृष्टिगोचर हो रहा है या फिर हमारी फूट से लाभ उठाने के लिये किसी विदेशी शक्ति का आगमन होगा। और कांग्रेसी शासक ही इस प्रवृत्ति को हवा दे रहे हैं। सब को अपनी गद्दी बनाये रखने की ही चिन्ता है। इसके लिये वह कुछ भी करने को तैयार है। भला जिन शासकों का मस्तिष्क इसी में उलझा रहे कि हमने दूसरों को किस प्रकार पराजित करना है वह देश की लाखों वर्ग मील भूमि, जो स्वतन्त्रता के पश्चात् विदेशियों ने अपने सैनिक बल से छीन ली है, उसको तो क्या मुक्त करायेंगे, भय है कि भविष्य में भी हमें कहीं उससे भी भयंकर परिणाम न भुगतने पड़ें।

आपस की फूट और देश को पुनः अखण्ड करने के लिये हमें ऋषि के बताये मार्ग को अपनाना होगा, स्वार्थ-भावना, की काली अन्धियारी में छिपी देशवासियों की राष्ट्रिय भक्ति को जगाना होगा, तभी यह उनके आदर्शों का भारत बन सकेगा।

भारतीय-करण

महर्षि दयानन्द भारतवासियों के लिये भारतीय सभ्यता व संस्कृति को ही श्रेयस्कर समझते थे। उनके सामने उस स्वर्णिम समय के चित्र थे जबकि सारा संसार भारतीय संस्कृति के सम्मुख नत-मस्तक होता था। वैदिक कालीन उसी संस्कृति व सभ्यता के पुजारी थे, जहां मानव मात्र, अपने धर्म अपने कर्त्तव्य को पहचानता था और उसी गौरवशाली अतीत का वह अपने भाषणों में जोरदार प्रचार करते थे। अंग्रेज लेखकों ने भी यह माना है कि स्वामी

दयानन्द का सारा प्रचार प्राचीन भारत के गौरव पर निर्भर है और इसी से वह जनता को प्रभावित करते हैं। महात्मा गांधी ने भी उन की भारतीय सभ्यता के प्रचार की बात तो मानी, परन्तु एक परिवर्तन करके और वह यह कि भारतीय संस्कृति केवल हिन्दुओं की संस्कृति ही नहीं बल्कि भारत भर के सब सम्प्रदायों की सांझी संस्कृति है। इसी सांझी संस्कृति का प्रदर्शन वह प्रार्थना-सभाओं में करते रहे और इस यथार्थता को भूल गये कि भारत का जलवायु भारत का वातावरण मूलतः हिन्दु संस्कृति से प्रेरित है, उस मूलधारा में बाद में किसी भी प्रकार से आकर मिले नदी-नालों से वह सांझी नहीं की जा सकती। विदेशी सभ्यता विदेशी ही रहेगी और उसे भारत की मूलधारा में मिलाने के प्रयत्न में कभी सफल न हो सकेंगे। इसी अशुद्ध विचार ने आज भारत में अनेक समस्यायें खड़ी कर रखी हैं। कांग्रेसी शासक आज भारत को हिन्दुओं का देश नहीं समझते, यद्यपि इस तथ्य का उनके पास कोई उत्तर नहीं कि देश में मुसलमानों, ईसाईयों आदि में अधिकांश हिन्दुरक्त ही प्रवाहित है और पूजा की विधि बदल जाने से उनकी भारतीयता नहीं बदल सकती।

महर्षि दयानन्द जो बात ९० वर्ष पहले समझ गये थे, वह महात्मा गांधी और आज के कांग्रेसी शासक आज तक नहीं समझ पा रहे और इसी गलत विचार-धारा के कारण देश में व्यर्थ ही वैमनस्य बढ़ा रहे हैं। यह तो अंग्रेज का ही चातुर्य था कि वह ऐसे विचारों को बढ़ावा देता रहा, जिसे स्वामीजी ताड़ गये थे और महात्मा गान्धी व कांग्रेसी शासक आज तक नहीं समझ पाये और जब तक इस मूलभूत सत्य को स्वीकार नहीं किया जाता कि भारत की एक ही सभ्यता व संस्कृति है और वह है हिन्दु सभ्यता व संस्कृति, तब तक न ही इस देश की समस्यायें सुलझेंगी और न ही सुख-शान्ति का राज्य होगा। वोटों के लालच में या गणतन्त्र का नाम देकर भले ही इस सत्य को छिपाया जाए, उन सम्प्रदायों की आंखों में धूल झोंकी जाए। जिन की भावनाएं विदेशों से जुटी हुई हैं जैसे ईसाई, मुसलमान, कम्यूनिस्ट और दूसरे अराष्ट्रीय तत्त्व, वह इसी देश के वासी होते हुए भी पृथक् सभ्यता-संस्कृति रखते हैं—परन्तु आज नहीं तो कल हमें स्वामी दयानन्द की ही शरण लेनी

पड़ेगी और हिन्दु संस्कृति व सभ्यता को इस देश की सभ्यता मानना पड़ेगा, तभी सही अर्थों में राष्ट्रियता के भाव जागेंगे।

और अन्त में

मुझे यही कहना है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ही सफल और सिद्ध चिकित्सक थे जिन्होंने इस बीमार देश की नाड़ी पर हाथ रख कर अपनी दिव्य-दृष्टि से उसका ठीक निदान किया, उसके लिये अपने अन्तिम श्वास तक काम किया और देशवासियों की सुषुप्त आत्मा को जगाने का प्रयत्न किया। महात्मा गान्धी और उनकी कांग्रेस ने जहां उनके प्रतिकूल पग उठाए, वहीं ठोकर खाई और जिन बातों को स्वीकार किया, उसमें सफल हुए। यदि समय रहते यह समझ लेते कि एक आदित्य ब्रह्मचारी, प्रकाण्ड विद्वान्, अद्वितीय योगी और कल्याणकारी भावनाओं से ओत-प्रोत महात्मा देशवासियों को गलत मार्ग बताने के लिए कार्य-क्षेत्र में नहीं उतरा था, उस के हृदय में देशवासियों की एकात्मकता के लिये एक अग्नि प्रज्वलित थी। और जो कुछ वह सत्य समझते थे, उसे निर्भयता से कहते थे। महात्मा गान्धी या कांग्रेसी शासक मानें या अभी न मानें स्वामी दयानन्द सरस्वती सच्चे अर्थों में राष्ट्र-भक्त, सद्धर्म-प्रचारक एवं निर्भीक संन्यासी थे, जिनसे महात्मा गान्धी ने प्रेरणा तो ली, परन्तु मार्ग गलत अपनाए।

पुस्तक प्राप्ति-स्थान

१—**श्री विशम्बरदासजी**—आर्य-समाज करौलबाग, नई दिल्ली।
२—**मैसर्ज गोविन्दराम हासानन्द**—नई सड़क, दिल्ली।
३—**मैसर्ज राजपाल एण्ड सन्स**—कश्मीरी गेट, दिल्ली।
४—**रामलाल कपूर ट्रस्ट**—२३२ माडल टाउन, सोनीपत।
५—**प्रबन्धक, पुस्तकालय**—आर्य-समाज, पटेल नगर, दिल्ली।
६—**मैसर्ज भारती-सदन**—कन्नाट सरकस, नई दिल्ली।
७—**नव-साहित्य प्रकाशन**—बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली।
८—**भारती-साहित्य भवन**—२३०/९० कनाट सरकस, नई दिल्ली